# वैदिक धर्म

[ फरवरी १९५२ ]

संपादक
**पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर**

सहसंपादक
**श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर**

## विषयानुक्रमणिका



**वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.**
**वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.**

# काश्मीरमें संस्कृत प्रचार

( लेखकः— श्री. जानकीनाथ, सि० शास्त्री, श्रीनगर )

विद्वानोंको यह विदित ही है कि काश्मीर प्रदेश एक समय संस्कृत-भाषा एवं इसके महान और अद्वितीय साहित्यका एक बडा विख्यात केन्द्र था। ४-५ सौ वर्ष विदेशी और विधर्मियोंके शासनकालको सहकर भी कुछ ५०-६० वर्ष पूर्व जितना संस्कृत साहित्य यहांपर यूरोपियन् विद्वानोंको प्राप्त हुआ है, उतना स्यात् ही किसी अन्य प्रान्त वा प्रदेशसे मिला होगा। पर कालकी विकराल गतिसे वह स्वर्णमय अवस्था अब रही नहीं। वह विद्या केन्द्र अब अज्ञानका एक स्रोतसा बना है और यवनोंकी अधिकताके कारण यहांकी ऋषि मुनियोंकी प्राचीन संस्कृति अब वह रही नहीं जिसके लिये यह पवित्र देश यशस्वी बना था।

थोडे ही कालके लिये यहां संस्कृत-भाषाका प्रचार करनेसे पता लगा है कि इस गये गुजरे समयमें भी यहांके लोगोंमें इस भाषाका बीजरूपी संस्कार अभीतक भी विद्यमान है और योग्य सीझाई आदि कार्य करनेपर वह निकट भविष्यमें ही अङ्कुरित होकर फलवान हो सकता है। विद्वानोंको इस प्रदेशकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकरने संस्कृत-भाषा सीखनेके लिये जो संस्कृत पाठमाला नामक २४ भागों-वाली पुस्तक रची है वह बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई है और विशेष कर जो इन परीक्षाओंका अपूर्व क्रम बान्धा है उसको यहां उत्साह और प्रेमके साथ लोगोंने अपनाया है। साधारण जनताको इन पुस्तकों वा परीक्षाओंका अभी पूरा ज्ञान भी नहीं है पर इसपर भी गत सितम्बरमें इस केन्द्रसे इन परीक्षाओंमें जहां ५ ही परीक्षार्थी सम्मिलित हुए थे वहां अब थोडे ही परिश्रमसे इस फरवरी मासकी परीक्षाओंमें कुल ६० छात्र सम्मिलित हो गये और उनमें जहां छोटे छोटे लडके लडकियोंकी काफी संख्या थी वहां ६६ वर्षकी आयुवाले एक सज्जन भी थे। कई एम० ए० और बी० ए० पास सज्जनोंने भी संस्कृत पाठमालाका अध्ययन प्रारम्भ किया है। आशा है इस वर्ष सैकडोंकी संख्यामें इन परीक्षाओंमें परीक्षार्थी सम्मिलित हो जायेंगे। एक और बडी प्रसन्नताकी बात यह है कि यहांके महिला महाविद्यालयमें पाठमालाकी स्थिर रूपसे अब पढाई हुआ करेगी। कई गावोंमें परीक्षाकेन्द्र खुलवानेके लिये यत्न हो रहा है। एक बडे गांवमें गत फरवरीसे ही केन्द्र खोला गया है। मैंने स्वयं देखा है कि इस फरवरीकी परीक्षायें देनेके लिये हिम वर्षा होनेपर भी दूर दूरसे परीक्षार्थी परीक्षाभवनमें समयपर पहुँच गये। इससे पता लगता है कि यहांके लोगोंमें अभी भी इस भाषाके प्रति पर्याप्त श्रद्धा और प्रेमका भाव है। गावोंमें श्री **काशीनाथजी** ज्योतिषी और श्रीनगरमें श्री **शम्भुनाथजी** हकीम **मलकोसर** संस्कृत प्रचार कार्यमें मेरे लिए आशातीत सहायक बने हैं इस कारण मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

वर्ष ३३ **वैदिक धर्म** अंक ३

क्रमांक ३९

▲ फाल्गुन, विक्रम संवत् २००८, मार्च १९५२ ▲

# सत्यनिष्ठ इंद्र

**नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमा विवासत्।**
**यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः॥**

ऋ० ।७।२०।६

( य अस्य घोर मन' ) जो इस इन्द्रके उग्र मनको ( यज्ञैः आ विवासत् ) यज्ञोंद्वारा प्रसन्न करा लेता है ( स जनः ) वह मनुष्य ( नु चित् भ्रेषते ) कभी भी स्थानभ्रष्ट नही होता ( न रेषत् ) वह कभी भी क्षीण नहीं होता। इसी प्रकार ( य. इन्द्रे दुवांसि दधिर ) जो इन्द्रके स्तोत्र गाया करता है, उसे वह ( ऋत- पा ) सत्यका पालन करनेवाला और ( ऋते- जा' ) सत्यके लिये ही प्रसिद्ध इन्द्र ( राये क्षयत् ) भरपूर धन देता है।

इन्द्र सत्यका पालन करनेवाला है और वह सत्यपालनके लिये ही प्रसिद्ध है। सत्यपालन विषयक इसकी कीर्ति समस्त विश्वमे प्रसिद्ध है। अतएव इसको असत्यसे बहुत चिढ है। असत्य व्यवहार करनेवालेपर वह बहुत क्रोधित होता है। अत. जो सत्यनिष्ठ नही होते उन्हे यह भयङ्कर प्रतीत होता है। किन्तु जो सत्यनिष्ठ होते है उनपर इसका प्रेम रहता है तथा उन्हे यह खूब धनधान्य तथा ऐश्वर्य प्रदान किया करता है; साथही उनकी अच्छी प्रकारसे रक्षा भी करता है। अतः लोगोको चाहिये कि सत्यनिष्ठ होकर ईश्वरकी प्रीति सम्पादन करे।

एक हृदय हो भारत जननी

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

## राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

# महात्मा गांधी–पुरस्कार

अखिल भारतीय

चतुर्थ राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन, बम्बई

के

शुभ अवसरपर

वेदज्ञानप्रवर्तक, कर्म और योगके प्रयोक्ता,

स्वाध्यायमण्डल आनन्दाश्रम पारडीके संस्थापक, वयोवृद्ध

**महर्षि श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी**

के

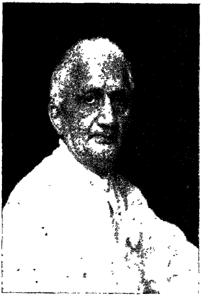
**कर-कमलोंमें**

उनकी हिन्दीकी अविस्मरणीय सेवाओंके प्रति असीम सम्मान-प्रदर्शन स्वरूप १५०१ रु. (पन्द्रह सौ एक रुपये) तथा यह ताम्र-पत्र सादर समर्पित है।

बम्बई
२३-२-५२

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी
सम्मेलन-अध्यक्ष

# श्री. पं. सातवळेकरजीको द्वितीय 'गांधी पुरस्कार'



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाकी ओरसे इस वर्षका 'महात्मा गांधी पुरस्कार' श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकरजीको उनकी सुदीर्घ एवं आदर्श हिन्दी साहित्य सेवाके उपलक्ष्यमें १५०१)रु. के रूपमें ताम्रपत्राङ्कित मानपत्रके साथ प्रदान किया गया।

भारतके खाद्यमन्त्री माननीय श्री. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने अपने करकमलोंद्वारा उक्त पुरस्कार अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा संमेलनके बंबईके ४ थे अधिवशनके अवसरपर ता० २३-२-५२ को मध्याह्न चार बजे झेंट झेवियर्स कॉलेजके सभा भवनमें प्रदान किया।

हिन्दीमें वैदिक साहित्यका प्रकाशन करनेवाली 'स्वाध्याय-मंडल' नामकी संस्था अपने जीवनके ३२ वर्षोंसे यह कार्य करती आरही है। वेद, उपनिषद्, गीता, महाभारत और रामायणके विषयमें गवेषणापूर्ण जितनी सुन्दर पुस्तकें पाश्चात्य भाषाओंमें प्राप्त है उतनी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें नहीं हैं। यह अत्यन्त खेदकी बात है। भारतीय विद्वानोंने भी वैदिक वाङ्मयके विषयमें जो कुछ लिखा है वह अंग्रेजीमें ही लिखा है। यह हमारा बहुत बडा दुर्भाग्य है कि हमें अपनी संस्कृतिके आधारभूत अपने प्राचीन एवं पवित्र ग्रन्थ अपनी ही राष्ट्रभाषामें पढनेके लिये दुर्लभ हुए हैं। कुरान, बायबिल तथा अन्य धर्मग्रन्थ सस्तेसे सस्ते, पूर्णशुद्ध और संसारकी अधिकांश भाषाओंमें मिल सकते हैं; किन्तु हम अपने वेदों और उपनिषदोंके विषयमें ऐसा नहीं कह सकते। इन्हीं विषयोंकी कमी दूर करनेके लिये पं. सातवळेकरजीने अपना सारा जीवन हिन्दीमें मुख्यत. तथा अन्य भाषाओंमें भी यथाशक्ति वैदिक साहित्यका निर्माण करनेमें लगा दिया है। वैदिक साहित्यका यह प्रकाशन हिन्दीके जीवनकी वह मूल्यवान एवं अक्षय निधि है जिसपर हिन्दी जगत्को सदा सर्वदा अभिमान् रहेगा।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा जिस वेग, उत्साह एवं आकर्षक पद्धतिसे राष्ट्रभाषाकी सेवामें संलग्न है उसे देखते हुए प्रत्येक भारतीयको आनन्द ही होगा। इस संस्थाकी स्थापना सन् १९३६ ई० में हुई। बापूके आशीर्वाद एवं राष्ट्रीय नेताओंकी छत्र छायामें यह पनपी और राजर्षि टंडनका आश्रय ग्रहण कर यह खूब ऊंची उठी। भदन्त आनन्द कौसल्यायन जैसे तपःपूत भिक्षुओंने रातदिन लगकर, पूरे एक युगका अपना जीवन समर्पण कर इसका विकास किया। श्री रामेश्वरदयालु दुबे जैसे निष्ठावान् व्यक्तियोंसे इसकी कार्यव्यवस्थामें परिपूर्णता आकर समिति दिनदूनी और रात चौगुनी उन्नति करती गई। मध्यप्रदेशके श्री हृषिकेश शर्मा-जिन्होंने अपना सारा जीवन ही हिन्दीकी सेवामें समर्पित कर दिया है— इस समितिके एक सशक्त आधार स्तम्भ है। गुजरातके प्रान्तीय संचालक श्री. जेठालाल जोषी. बंबईके प्रान्तीय संचालक श्री. कान्तिलालजी जोषी तथा महाराष्ट्रके प्रान्तीय संचालक श्री. डांगरेजी जैसे कर्मयोगियोंका सहयोग प्राप्त कर यह समिति दिनप्रतिदिन यशस्विनी एवं शक्तिमती बनती जा रही है।

जिस समितिके प्रान्तीय कार्यालय १२, परीक्षा केन्द्र १०७९, प्रमाणित प्रचारक २९१७, परीक्षक १३७९ तथा परिक्षार्थियोंकी आजतककी संख्या ९ लाख २४ हजार १०० है उसके विषयमें अन्य अधिक परिचय क्या दिया जाए ?

समितिकी ओरसे पूज्य पं. जी को जिस आदरभावसे 'गांधी पुरस्कार' समर्पित किया गया उसका शाब्दिक स्वरूप यह है—

'भारतके इस वयोवृद्ध महर्षिने सद्ज्ञान प्रचारमें जितना योग दिया है, राष्ट्रभाषा हिन्दीके द्वारा वेदके संदेशको घर-घर पहुँचानेका जो प्रयत्न किया है, उसके प्रति कृतज्ञ होना स्वयं गौरवान्वित होना है।'

'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी ओरसे अ. भा. ४ थे रा भा प्र. सं बंबईके शुभावसरपर वेदज्ञान-प्रवर्तक, कर्म और योगके प्रयोक्ता, वयोवृद्ध महर्षि श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके कर-कमलोंमें उनकी हिन्दीकी अविस्मरणीय सेवाओंके प्रति श्रद्धाके निदर्शन स्वरूप (१५०१) रु. का यह महात्मागांधी पुरस्कार समर्पित किया जा रहा है। समितिका यह परम सौभाग्य है। महर्षिको श्रद्धा सहित प्रणाम।'

इस सम्मेलनके अध्यक्ष माननीय मुन्शीके अध्यक्षीय भाषणके पश्चात् वर्धा समितिके परीक्षामन्त्री श्री रामेश्वर दयालुजी दुबेने पुष्पहार अर्पण किया। माननीय मुन्शीजीने अपने हाथोंसे आदरणीय पं. सातवलेकरजीके मस्तकपर कुंकुम तिलक एवं अक्षत लगाकर श्रीफलके साथ ताम्रपत्र एवं (१५०१) का चेक दिया। उन्होंने कहा कि यह हर्षकी बात है कि सरस्वती और लक्ष्मीका संमिलित समादर आपको प्राप्त हो रहा है।

## पण्डितजीका प्रत्युत्तर

इसके पश्चात् श्री पं. सातवलेकरजीने इस सत्कार समारम्भका प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि- 'मुझे आज राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी ओरसे जो 'महात्मागांधी पुरस्कार' प्राप्त हुआ है उसका मैं यह अर्थ लगाता हूँ कि जिस प्रातः स्मरणीय महापुरुषकी कीर्ति अक्षय रखनेके लिये यह प्रयत्न हुआ है उसके पद चिन्होंपर चलनेका प्रयत्न करने तथा उसके आदर्शोंका अनुगामी बननेका प्रयत्न करनेके लिये मैं अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दूं। पूज्य बापूने हिन्दीकी अविस्मरणीय सेवा की है और मै भी उसी हिन्दीकी सेवामें अपनेको लगा दूंगा।

मैं इस समय वैदिक ऋषियोंके मन्त्रोंका संकलन कर रहा हूँ। वेदोंमें अनेक ऋषि हैं। प्रत्येकके मन्त्रोंका एकत्र संग्रह करके उनके विभिन्न विचारोंका पृथक्करण करनेका कार्य मैं कर रहा हूँ। २१ छोटे छोटे संग्रह तैयार हो चुके हैं। वसिष्ठ ऋषिका दर्शन लिखा जा रहा है जिसमें लगभग एक सहस्र मन्त्र हैं। ऐसे पांच ऋषि हैं जिनके मन्त्र संग्रह बृहदाकारमें तैयार होंगे 'वसिष्ठ दर्शन' पूरा हो जानेपर भारद्वाज ऋषिका दर्शन तैयार करना है। ऐसे बृहदाकार ग्रन्थोंके पीछे सहस्रों रुपयोंका व्यय होता है। यदि मेरे जीवित रहते धन मिलता रहा तो हिन्दीके भाण्डारमें मैं इन अमूल्य रत्नोंको जमा करके स्वयंको धन्य समझूंगा। अन्यथा मैं अपनी ओरसे ५ वर्षोंके अन्दर यह सब कुछ लिखकर तो अवश्य ही रखूंगा और इस प्रकार राष्ट्रभारतीकी सेवासे अपनेको पुण्यवान् मानूंगा। मुझे आज यह जो (१५०१) रु. की निधि प्राप्त हुई है इसे मै इसी कार्यमें लगाऊगा।

अन्तमें भदन्त श्री आनन्दकौसल्यायनजीने अत्यन्त स्वल्प किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्दोंमें समितिके कार्यकी प्रशंसा करते हुए उसके भविष्यके मार्गमें आनेवाली बाधाओंकी ओर इंगित किया तथा पण्डितजीके ऋषि-कार्यमें धन कुबेरोंकी नगरी बंबईको अपना कर्तव्य पूर्ण करनेका आग्रह किया।

# संस्कृत-परीक्षा-केन्द्र-वृत्त

## विजापुर

विजापुर केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरण समारम्भ ता० ८-१-५२ को अत्यन्त समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। यह समारम्भ वहाँके एस० एस० हाईस्कूलमें मनाया गया। नगरके अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति इस अवसरपर उपस्थित थे, जिनमें प्रिन्सिपाल बी० एस० गणाचारी, प्रोफेसर एच० टी० सासनूर, प्रोफेसर एच० लगंळ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अच्छे अङ्कोंमें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको पारितोषिक भी दिया गया। संस्कृत भाषा प्रचार समिति बिजापुरका वार्षिक विवरण केन्द्र व्यवस्थापक श्री पी० जे० मठ ने सुनाया। श्री यंक चि० सिद्दप्पा का अत्यन्त बोधप्रद भाषण होकर समारम्भ समाप्त हुआ।

## मानवत

जगदम्ब आयुर्वेदिक फार्मसीके अध्यक्ष वैद्यभूषण श्री भगवान शास्त्री खेडकर ने मानवतमें केन्द्रव्यवस्थाका कार्यभार ग्रहण किया है। वहाँ संस्कृत परीक्षाओंके व्यवस्थित प्रचारके लिये निम्नाङ्कित सज्जनोंकी एक समिति निर्धारित की है। १- श्री रंगनाथ बुआ जोशी २- श्री रंगा बुआ दडके।३- श्री दत्ताबुआ चोथे। ४- श्री बालजी महाराज। ५- मोहनलालजी व्यास। आशा है वहाँका कार्य अब खूब बढेगा।

## मोमीनाबाद

मोमीनाबादमें संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभाका संगठन कर लिया गया है। यो० नू० विद्यालयके मुख्याध्यापक श्री एकनाथराव माधवराव कुळकर्णी B. A. L. L. B. इस सभाके अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। मन्त्रीके स्थानपर केन्द्र व्यवस्थापक श्री० दे० वा० धर्माधिकारी का निर्वाचन हुआ। सभाके निम्नाङ्कित सदस्य निर्वाचित हुए १- श्री चि० वै० रामपूरकर, २- श्री प्र० गो० रामदासी, ३- श्री य्यं. सां० वसेकर, ४-श्री विष्णुकुमार देशमाने, ५- श्री माधवराव कुंडूकर वैद्य ६- श्री चन्द्रगुप्त आर्य।

केन्द्र व्यवस्थापक महोदयके विशेष उत्साह एवं दक्षताके परिणामस्वरूप परीक्षार्थियोंकी संख्या सन्तोषजनक रूपसे बढ रही है।

## नन्दुरबार

नन्दुरबार संस्कृत परीक्षा केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरण उत्सव अत्यन्त समारोह पूर्वक मनाया गया। स्कूलके कार्यकारी सभासद माननीय डॉ० डी० जी० काणे की पत्नी सौ. काणे ने इस अवसरपर अध्यक्ष स्थान ग्रहण किया। नगरके अनेक प्रतिष्ठित महानुभाव भी आमन्त्रित थे। श्री पु. दे. पाठक प्रकाशेकर, श्रीमान् सेठ गोकुलचंद चोथमल का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सर्वप्रथम केन्द्र प्रचारक श्री बलवन्त अमृतरावजी काव्यतीर्थने वार्षिक विवरण पढकर सुनाया और संक्षेपसे अपना प्राथमिक भाषण दिया। इसके पश्चात् संस्कृत अध्यापक माननीय श्री पु. सा दीक्षित का उद्बोधक भाषण हुआ। अध्यक्षमहोदयाने उत्तीर्ण छात्रोंको प्रमाणपत्र दिये और सेठ गोकुलचंदजीने चालीस परीक्षार्थियोंको गीताकी पुस्तकें पारितोषिक रूपमें प्रदान की तथा यह आश्वासन दिया कि प्रतिवर्ष इसी प्रकार पारितोषिक दिया जायगा। अन्तमें डा. काणे एवं श्रीमती काणेका अध्यक्षीय भाषण होकर पुष्पहारादि अर्पणके बाद समारम्भ समाप्त हुआ। डॉ. काणे ने स्कूलको उसकी ऐसी प्रवृत्तियोंसे प्रोत्साहित होकर लगभग पन्द्रह बीस हजार रुपये दानमें दिये हैं। आप जैसे महानुभावोंके प्रोत्साहनसे सांस्कृतिक कार्योंमें खूब बढावा मिलता रहता है।

## चांदूर रेलवे

स्थानीय केन्द्र व्यवस्थापक श्री कृ. गु. देशपांडेजी ने संस्कृत परीक्षा केन्द्र (सरकारी हाईस्कूल) के प्रमाणपत्र वितरणोत्सवका निम्न लिखित वृत्त भेजा है।

इस संस्थाके पंचम स्नेह सम्मेलनके अवसरपर संस्कृत परीक्षाओंका प्रमाणपत्र वितरण समारम्भ अपनी विशेषताके साथ बहुत ही स्फूर्तिदायक रूपमें सम्पन्न हुआ। स्नेह सम्मेलनके सुशोभित मण्डपमें यह कार्य हुआ। इस अव-

सरपर अध्यक्ष पद स्थानीय दानशूर श्री मन्नालालजी गुप्तने ग्रहण किया। प्रारंभमें मुख्याध्यापक श्री नाफडेजी ने संस्कृत भाषाके महत्त्वपर अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया तदनंतर अध्यक्ष महोदयके करकमलोंद्वारा प्रमाण पत्र वितरित किए गए। अन्तमें अध्यक्षीय भाषण एवं पुष्पहार अर्पणादि होकर समारम्भ समाप्त हुआ।

इस केन्द्रका ( सितंबरकी परीक्षाओंका ) परिणाम शतप्रतिशत रहनेपर बडा सन्तोष व्यक्त किया गया। संस्कृत भाषाके विषयमें स्कूलके छात्रोंमें अभिनव जागृति दिखाई पड रही है।

## केडिला ( बडेकिल )

स्थानीय प्रमाणपत्र वितरणोत्सव २०-१-५२ को सायं ३ से ६॥ बजे तक एक विशेष समारोहके साथ मनाया गया। अध्यक्ष श्री बडेकिल वेंकटरमण भट्टजी थे। प्रथम परीक्षा-केन्द्र-निरीक्षक श्री एन. वी. कृष्णरावजी ने केन्द्र-विवरण पढकर सुनाया। उसके बाद केन्द्रव्यवस्थापक श्री च० मू० ईश्वरशास्त्रीजी का भाषण हुआ। श्री मिस्तूर पुरोहित शङ्कर नारायण भट्टजी ने गीर्वाणभारतीके महत्व तथा स्वाध्यायमण्डलके सभी कार्य कलापोंको बतलाया। वैजयन्ती पञ्चाङ्गकर्ता, ज्योतिर्विद्या मार्तण्ड श्री यमुञशङ्कर जोयिसजी का भी सुन्दर भाषण हुआ। इसी प्रकार जिलेके अन्य अनेक विद्वानोंके भाषणोंके पश्चात् अध्यक्षीय भाषण हुआ और प्रमाणपत्र वितरित किये। सर्व प्रथम परीक्षार्थीको पुरस्कार दिया गया। सबसे अन्तमें वाल्मीकि रामायणके अयोध्या काण्डके श्री राम पट्टाभिषेकका कुछ हिस्सा पढकर प्र० प्र० मि० पु० शंकरनारायण भट्टजीने कन्नडी भाषामें उसका अर्थ विवरण किया और मङ्गल गानके पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

## जालना

हैद्राबादराज्यमें जालना केन्द्र प्रमुख रूपमें संस्कृत प्रचारार्थ यत्नशील है। सभी परीक्षाओंके लिये सन्तोषजनक संख्यामें परीक्षार्थी तैयार हुए है। श्री वि० ना० थत्ते बी. ए. का प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त हो रहा है। केन्द्र व्यवस्थापक श्री श्रीराम शास्त्री शेलगांवकरजीने शिक्षणवर्गोंकी भी बहुत सुन्दर व्यवस्था की है, जिससे विद्यार्थियोंको संस्कृत सीखनेमें अच्छी सुविधा प्राप्त रहती है।

## आकोला

आकोलाके संस्कृत भाषा प्रचार समितिके मन्त्री श्रीयुत वि. ह. पंडित सूचित करते हैं कि उनके केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव न्यू इंग्लिश हाईस्कूल के सभाभवनमें सम्पन्न हुआ। जिला शिक्षा विभागके मुख्याधिकारी माननीय आपटेजी के ग्रामान्तर चले जानेके कारण प्रमाण पत्र वितरणका कार्य श्रीयुत जोशीजी प्रिंसिपल सीताबाई आर्टस कॉलेजके कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। अध्यक्ष माननीय माटेजी थे। समितिकी वार्षिक रिपोर्ट श्री वि० ह० पंडितजीने पढकर सुनाई तथा विदर्भ विभागके मुख्य कार्यवाह श्री वि. उंप दीक्षितजीने विदर्भकी प्रगतिका विवरण पढा। माननीय जोशीजी का संस्कृतमें ही संस्कृत भाषाकी महत्तापर बहुत सारगर्भित भाषण हुआ। इसके बाद श्री माटेजी का अध्यक्षीय भाषण हुआ। अन्तमें माननीय तन्हाळकरजी ने संस्कृतमें ही सबका आभार माना। समारम्भमें सभी हाईस्कूलों एवं अन्य शिक्षण-संस्थाओंके शिक्षकगण एवं विद्यार्थी बडी सख्यामें उपस्थित थे;

## बहेडी

यहाँका प्रमाणपत्र वितरण समारम्भपर स्थानीय स्कूलके मुख्याध्यापक श्रीमान् धर्मेन्द्रसिंहजी एम. ए. एल. टी. एल्, एल्, बी. सभापति पदपर आसीन हुए। आपका संस्कृतके महत्वपर बडा ओजस्वी भाषण हुआ। इसके पश्चात् प्रमाणपत्र वितरित किए गए। केन्द्र व्यवस्थापक श्रीयुत भगीरथी गुप्तजी सि० शास्त्रीने आगत महानुभावोंका आभार मानकर समारम्भ समाप्त किया।

# ब्रह्म--साक्षात्कार

## अध्याय ४ । न तस्य प्रतिमा अस्ति० ॥ वा. य. ३२।३

( उसका बनानेवाला इत्यादि कोई नहीं । )

## खण्ड ६ ] सूर्य परमात्माकी प्रतिमा है तो किन अर्थोंमें ?

लेखक— श्री० गणपतराव बा० गोरे, ३७३ मंगळवार ' बी ', कोल्हापूर

**पूर्व परिचय**— वेदमें जिस परमात्माकी प्रतिमा होनेका और न होनेका भी ( दोनो प्रकारका ) वर्णन आता है वह साकार सूर्य है, ' निराकार परमात्मा ' नहीं– यह बात वेदादि शास्त्रोंके प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो रही है।

परमात्माकी प्रतिमा है वा नहीं, वह साकर है वा निराकार, इसपर सैकड़ों शास्त्रार्थ हो चुके हैं, और वादियों प्रतिवादियोंने अपनी युक्तियों प्रति युक्तियों और वाग्छलोंसे एक दूसरेको हराया है। परंतु स्वय वेद किन अर्थोंमें परमात्माकी प्रतिमा होने और न होनेका निर्णय देता है, और यह निर्णय युक्ति प्रमाणसे कहांतक संपुष्ट होता है, इसपर आजतक विचार हुआ ही नहीं है ! इसीको सुलझानेके लिए खण्ड ५ में दर्शाया जा चुका है कि साकार सूर्य परमात्माकी प्रतिमा नहीं है तो किन अर्थोंमें ? ( देखो दिसंबर १९५१ तथा जनवरी १९५२ के अंक ) आज खण्ड ६ में सिद्ध करना है कि सूर्य परमात्माकी प्रतिमा है तो किन अर्थोंमें ?

### ( १ ) सूर्य ही विश्वका ' प्रतिमान ' बनाने और मापनेवाला तथा प्रतितोल है।

ऋषि गृत्समदः । देवता इन्द्रः ।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो, यं युध्यमाना
अवसे हवन्ते । यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥

ऋ० २।१२।९ ॥ अ० २०।३४।९ ॥

**अर्थ**— ( यस्मात् ऋते ) जिसके बिना ( जनास. ) लोग ( न विजयन्ते ) विजय प्राप्त नहीं कर सकते, और ( यं ) जिसको ( युध्यमानाः ) परस्पर लडनेवाले (अवसे) अपनी अपनी रक्षाके लिए ( हवन्ते ) हवनं द्वारा प्रार्थना करते हैं। ( यः ) जो ( विश्वस्य प्रतिमानं ) विश्वका निर्माण करने बनानेवाला मापनेवाला अथवा विश्वका प्रतितोल= Counter balance ( बभूव ) स्वसत्तासे बन गया, और जो ( अच्युतच्युत् ) स्वयं किसीसे न हिलाया जाता हुआ सबको ( हिलाता, घुमाता वा आवागमन



करवाता है ( स ) सो ( जनासः ) हे मनुष्यो ! ( इन्द्रः ) इन्द्र वा साकार सूर्य ही है ॥ ९ ॥

**स्पष्टीकरण**- १ इन्द्र सूर्य— ऋ १।१६४।४६ इन्द्रं मित्रं मंत्रकी देवता ' सूर्य ' है। अतः ' इन्द्र ' सूर्यका ही एक नाम है– यह बात स्मरण कर लें।

२ यह साकार सूर्य ही युद्ध करनेवालोंको विजय पराजय दिलाता है, ' निराकार परमात्मा ' नहीं ! कुर्आनमें भी यह वैदिक सिद्धान्त उतरा है– देखो कुर्आन ३।१२४-५ ॥ ८।९-१०,६५-६॥९।२५-६॥३३।९॥५१।४०-४५॥ इत्यादि। वेदने तो यह भी बता दिया कि सूर्यसे सहायताकी प्रार्थना हवन करके की जाती है, जिसका उल्लेख कुर्आनमें नहीं मिलता।

३ **प्रतिमानं**— ' विश्वस्य प्रतिमानं बभूव ' = विश्वकी प्रतिमा हो गया है, ' ऐसा अर्थ वेदामृत प्रथम संस्करणमें श्री पं० सातवलेकरजीने किया है। दूसरे संस्करणमें निराकारवादी स्वामी वेदानन्दजीने अर्थ किया है ' विश्वकी निर्माता है।' दोनों अर्थ ठीक हैं। विश्वकी

उत्पत्ति सूर्यके उपादान और निमित्तसे हुई है अतः वह ' विश्वकी मूर्ति ' भी है। बनानेवाला = निर्माता भी वही है। ' प्रतिमा ' पदको निकालनेसे भी मन्त्र निराकारवादको सिद्ध नहीं करता ! परंतु यहां विचारणीय पद तो ' बभूव ' है जिसके अर्थ हैं ' भवति, अभूत्, भविष्यति, भवितुं, भूत, भू ' सारांश यहां ' बभूव ' का अर्थ है ' स्वयं वा स्वसामर्थ्यसे बना हुवा=' स्वयम्भू ' ये ' बभूव ' तथा ' स्वयंभू ' पद वेदमें साकार इन्द्र, अग्नि, सूर्यादिके लिए ही वारंवार उपयुक्त हुए हैं- निराकार परमात्मा ' के लिए नहीं ! कारण क्या ? पहला तो यह कि सूर्य ही सात बडों और सैकडों छोटे ग्रहों, उपग्रहोंको अनेकों धूमकेतुओंको इनके बीचोंबीच रहकर अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे अपनी प्रदक्षिणा करवा रहा है। दूसरा यह कि पृथिवीपर भी अग्नि एक ओर आकाश और वायु दो निराकार तत्वों को, और दूसरी ओर जल और पृथिवी दो साकार तत्वोंको लिए हुए- उनके बीचमें रहते हुए, मानो उनका प्रतितोल बना हुआ है।

निराकारके शरीरसे साकार सृष्टिकी उत्पत्ति स्वयं निराकारवादी भी नहीं मानते। अतः विश्वस्य प्रतिमानं साकार सूर्य ही है।

४ अच्युतच्युत्— ' च्यु ' धातुके अनेक अर्थोंमें ' बनाना, बनवाना, सांचेमें ढालना, उत्पन्न करना ' ये भी हैं। अतः ( अच्युत+ च्युत् ) = न उत्पन्न किया हुआ, किसीसे न बनाया गया हुआ वा स्वयमेव उत्पन्न हुआ हुआ स्वयम्भू+ उत्पन्न कर्ता। यह ' किसीसे न बनाया गया हुआ सृष्टिका उत्पादक ' वेदके अनुसार सूर्य ही है, कोई निराकार परमात्मा नामक तत्व नहीं ?

' च्यु ' का एक अर्थ To cause to move = चला यमान् करवाना, चलवाना, धक्केलना भी है। तदनुसार ( अच्युत+ च्युत् ) = अचलायित+ चलानेवाला. यह ' किसीसे न चलाया जाता हुआ सृष्टिका चलानेवाला ' वेदके अनुसार सूर्य ही है, ' निराकार परमात्मा ' नहीं !

'च्य' का एक अर्थ To cause to fall = गिरवाना वर्षा करवाना भी है। अतः ( अच्युत+च्युत् ) = न गिराया गया+गिरानेवाला वा न वर्षाया-गया+वर्षानेवाला। यह भी वेदके अनुसार साकार सूर्य ही है, निराकार नहीं !

' अच्युत ' के अर्थ हैं ' अडल, अनश्वर, अमर, अबदल, न गलनेवाला, न पिघलनेवाला, न चूनेवाला। अब ( अच्युत+च्युत् ) अडल+डालनेवाला, अनश्वर+नाश करनेवाला, अमर+मारनेवाला, अबदल×बदलानेवाला, न गला हुआ+गलानेवाला, न पिघला हुआ+पिघलानेवाला, न टपका हुआ-टपकानेवाला। अर्थात् इन्द्र वा सूर्य स्वयं ' अडल ' होते वा रहते हुए चराचर जगतको सांचोंमें ढालता रहता है, स्वयं अमर रहते हुए सृष्टि-संहार करता है इत्यादि, पुनः सिद्ध हुआ कि सृष्टिकर्त्ता सृष्टि-संहर्ता साकार सूर्य ही है, ' निराकार ' परमात्मा नहीं।

१ शंका— सूर्य तो प्रतिदिन उदय होकर, ऊपर चढता, और सायंकाल ढलकर अस्त हो जाता है, फिर वह ' अडल-अबदल ' कैसे हो सकता है ?

समाधान— पृथिवी अपनी कीलपर घूमती है, इसी कारण सूर्य उदय अस्त होता सा दीखता है। वरन सूर्य तो ग्रहोंकी माला मानो गलेमें डाले घूम रहा है !

२ शंका— सूर्यका तेज और ताप सूर्यसे पिघलकर चूकर रसियाकर ही तो पृथिवीपर आता है, फिर वह ' न गलनेवाला,' ' न पिघलनेवाला ' न चूनेवाला' कैसा ?

समाधान— वेद सूर्यको ' अच्युत '= ' न चुवा हुआ वा पिघलाया हुआ ' कह रहा है। वेद सूर्यको ' सत्यम् ( ज्योतिः ) ' ऋ० ६।१७०।२ में, ' अदितिः ' ऋ० ७।६०।१ में, 'ज्योतिषां ज्योतिः' ऋ० १०।१७०।३ में, ' बृहत् ( ज्योतिः ) ' ऋ० १०।१७०।२-३में बताता है। इनसे सूर्यका ' अनश्वरज्योति स्वरूप ' होना तो सिद्ध होता। परन्तु ' ज्योतिका सूर्यसे पिघलकर निकलना ' सिद्ध नहीं होता। सूर्य पिघलता होता तो आजतक समाप्त हो गया होता, और ' सत्यम् ' ' शेष ' न कहलाता।

## सूर्य प्रजापतिकी बरात

३ शंका— सूर्य ग्रहोंको साथ लिए कहां जा रहा है ? गतिमान् परमेश्वर सर्वव्यापक तथा सर्वनियन्ता कैसे हो सकता है ?

समाधान— परमेश्वरका चलना वेद, बाइबल, कुरान तो मानते ही हैं, परंतु आर्यसमाजी विद्वान् पं० जयदेवजी भी स्वीकार करते हैं यथा—

व्रात्य आसीदीयमान ॥ अ० १५।१।१ ॥

अर्थ—( व्रात्यः ) व्रात्य परमेश्वर ( ईयमानः ) गति करता ( आसीद् ) रहता है ॥ १ ॥

स्पष्टीकरण-वेदका व्रात्य शब्द मराठी तथा गुजरातीमें में ' वरात, ' फारसी तथा आर्यभाषामें ' बरात ' बना है- अर्थ सर्वत्र है ' शादीका जुलूस = Marriage procession ' ' शादी ' का अर्थ है ' आनंद, । ' सूर्य परमेश्वर आनंदमय ही तो है ! मनुष्योंके विवाहकी बरातें प्रायः रातको ही निकला करती है। मुसलमान शबे बरात नामक त्योहार रातको मशालें जलाकर ही मनाते हैं। तब भी व्रात्य = बराती परमेश्वरकी असंख्य बरातें ऊपर आकाशमें चल रही होती हैं—अर्थात् अनेकों सूर्य अपनी बरातों = ग्रह-मालाओंको लिए प्रवास कर रहे होते हैं। अथर्ववेद कांड १५ सूक्त १ में व्रात्य प्रजापति = बराती सूर्यका वर्णन आया है, सो श्री पं जयदेवजीके शब्दोंमें पढ़िए—

## व्रात्य प्रजापतिका प्रस्थान।

वह ध्रुवा = भूमिकी ओरकी दिशाको चला। उसके साथ भूमि, अग्नि, ओषधियां, वनस्पतिएं, बड़े वृक्ष और उनसे बननेवाले नाना पदार्थ या उसकी जातिकी लताएं भी इसके पीछे चलीं। जो व्रात्य प्रजापतिके इस प्रकारके स्वरूपको साक्षात् करता है, वह भूमिका, अग्निका, ओषधियोंका, वनस्पतियोंका, वनस्पतिके बने विकारोंका और उन लताओंका प्रिय आश्रय हो जाता है॥ अ० १५।१ ( ६ ) १-३ ॥ " ×

टीप— ' अग्नि ' के अन्तर्गत मनुष्य, पशु, पक्षि तथा समस्त जीव सृष्टि है। ( ले० ) " वह ऊर्ध्वा, ऊपरकी दिशाको चला। ऋत, सत्यम्, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र उसके साथ उसके पीछे पीछे चले। जो व्रात्य प्रजापतिका इस प्रकारका रहस्य साक्षात् करता है, वह ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रोंका प्रिय आश्रय हो जाता है ॥ अ० १५।१।४-६ ॥ "

यह है व्रात्य प्रजापति = बराती सूर्यकी अखंड चलने-वाली नहीं दौडनेवाली बरातका वैदिक वर्णनका नमूना-विस्तार वेदमें ही देखें,। सूर्य देव अपने ग्रहों आदिको लिए हुए, एक सेकंडमें १९ मीलकी तीव्र गतिसे एक VEGA वेगा नामक बड़े सूर्यकी ओर दौड रहे हैं।

ईश्वर निराकार है और वह सर्वत्र परिपूर्ण है और एक स्थानको छोडकर दूसरे स्थानपर जा नहीं सकता-जाए तो सर्वव्यापक न रहे, सर्वनियन्ता न रहे, सर्वसाक्षि न रहे-ऐसा आर्यसमाजियोंका मत है। परंतु वेद इसे झुटलाता है—पाश्चात्य ज्योतिष-विज्ञान इसे झुटलाता है।☙

× वेद वाक्य है ' प्रियं धाम भवति, ' इसका अर्थ ' प्रिय रहनेका स्थान होजाता है ' ऐसा होना चाहिए। अर्थात् जो बराती प्रजापति = सूर्यकी बरातको पहचान लेता है, उस मनुष्यमें भूमि, अग्न्यादि देवोंकी सभी शक्तियां बड़े प्रेमसे आकर निवास करती हैं। ' निराकार परमेश्वर ' को माननेवालोंके लिए नहीं, अपितु साकार सूर्यको परमेश्वर माननेवालोंके लिए यह एक अपूर्व वेदका आशीर्वाद है। यही अर्थ आगे आनेवाले मंत्र ६ में भी पढ़िए। प्रिय आश्रय हो जाता है ' का अर्थ है ' भूमि अग्न्यादिका रक्षक बन जाता है, ' जो वेदको अभिप्रेत नहीं, ऐसा मेरा मत है।

×Among the many conclusions of astronomers as to the movements of the ' heavenly bodies ' none is more strange and mysterious in its suggestion than that recently arrived at to the effect that in all this vast array of millions of stars, the limits of which we can neither discover nor imagine, there are two huge streams moving in opposite directions, and in one or other all the stars are involved. Whence do they start? Where are they going? There is no answer. [ यही वेदके आपः है-ले०] Another conclusion, which is arrived at quite simply by the examination with the spectroscope of the light coming from the star named Vega by astronomers, is that our sun and its attendent planets are moving towards that star. It is true that it is many billions of miles away from us, but we are rushing towards it somewhat rapidly according to mundane notions—namely, at the rate of 19 miles a second [ Science from An Easy Chair, 1913 Edition P. 224-5 ]

पाठको ! सूर्य तो अपने ग्रहों, उपग्रहों, धूमकेतुओंको मानो अपने गलेमें लटकाए हुए प्रस्थान कर रहा है ! अतः इनमेंसे कोई भी सूर्य परमेश्वरकी व्यापकता, नियन्त्रण और देखभालका उल्लंघन कर नहीं सकता ! पुनः सिद्ध हुआ कि वेदके अनुसार, निरंतर गति करने करानेवाला साकार सूर्य ही परमेश्वर है, ' निराकार परमात्मा ' नहीं !

४ शंका—परमेश्वरके हिलने हिलानेका वर्णन कहीं अन्यत्र भी वेदमें आया है क्या ?

**समाधान**— ऋषि द॒ध्यङ् अथर्वा । देवता आत्मा । **अनेजदेकं मनसो जवीयो** । वा० य० ४०.४ ॥

**अर्थ**—( मनसः ) मनन शक्तिसे युक्त ( एकं ) एक आत्मा है जो ( जवीयः ) बडा वेगवान् है, परंतु ( अन् एजत् ) हिलाया नहीं जाता ॥ ४ ॥

**भावार्थ**— वह आत्मा सूर्य है जो स्वसामर्थ्यसे ही दौड रहा है । कोई अन्य शक्ति इसे दौडाना तो क्या हिला भी नहीं सकती । **मनसः स्वयम्भू मनु यही है** ॥ ४ ॥

**तदेजति तन्नैजति** ॥ वा य० ४०।५ ॥

**अर्थ**— ( तत् एजति = एजयति ) वह चराचर जगत-को हिलाता, चलाता है, परंतु ( तत् न एजति ) वह किसीसे हिलता नहीं ॥ ५ ॥ **बरातको बराती ही लिए फिरता है !**

## ग्रहमालामें ब्रह्म साक्षात्कार

५ शंका— सूर्य ग्रहोंको मानो गलेमें बांधे दौडता है सो कैसे ? अधिक उदाहरणसे समझाइए.

**समाधान**— किसी Atlas = पृथिवीके नकशेकी पुस्तकमें Solar System = **सूर्यके अंगोंका** नकशा देखते ही ऐसा भास होता है मानो सूर्यदेव अपने गलेमें निम्न ९ ग्रह मालाएं लटकाए हुए हैं—

१ सबसे छोटीमाला बुध ग्रह = Mercury की है। यह सूर्यसे केवल ३३,५५,००००० मीलकी दूरीपर रहते हुए सूर्यको प्रदक्षिणा किया करता है । इसे एक भी चन्द्रमा नहीं है ।

२. दूसरी माला शुक्र ग्रहकी है । यह शुक्र = VENUS सूर्यसे ६,७५,००००० मीलकी दूरी पर रहते हुए सूर्यके चौफेर फिरता रहता है । इसे भी चंद्रमा नहीं है ।

३. तीसरी माला हमारी EARTH = पृथिवीकी है । यह सूर्यसे ९,२८,४०,००० मीलि दूर रहती हुई सर्यकी प्रदक्षिणा किया करती है । इसे एक चांद है ।

४. चौथी माला मंगलग्रह = Mars की है । यह पृथिवी के समीप है, अतः पाश्चात्य ज्योतिषी इसके संबंधमें बडी जानकारी रखते हैं । इसे दो चन्द्रमा रातको प्रकाशित करते हैं ।

५. पांचवी माला सैंकडो छोटे छोटे ग्रहोंके झुंड = Minor planets की है, जो सब मिलकर सूर्यकी प्रदक्षिणा किया करते हैं—

६ छठी माला सूर्यदेव बृहस्पति Jupiter की गलेमें लटकाए हुए हैं । ' बृहः पति.' नामसे ही प्रसिद्ध है कि यह ग्रहोंमें सबसे बडा है— महानतामें सूर्यसे उतर कर इसीका नंबर है । रोमन लोगोंका सबसे बडा देव यही है । यूनानी इसे ZEUS कहते हैं । यह ३८,३०,००००० मीलकी दूरीसे सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है, । यह हमारी पृथिवीसे ३०० गुणा भारी और १३०० गुणा आकारमें बडा है । इसे ८ चंद्रमा प्रकाशित करते हैं ।

७. सातवीं माला शनि ग्रह = Saturn की सूर्य देव गलेमें लटकाए भ्रमण कर रहे हैं । यह सूर्यसे ८७,२०, ००००० मील दूर रहते हुए सूर्यकी एक प्रदक्षिणा १०, ७५९ दिनोंमें पूरी करता है । इसका सरासरी व्यास लग- भग ७७,२३० मीलका है, जो कि पृथिवीसे १० गुणा बडा है। यह अपनी कीलपर १०।१४ घंटोंमें घूम जाता है । यह कई छल्लों वा चूडियोंसे घिरा हुआ है, जो सब एक दूसरेसे पृथक् पृथक् रहते हुए भी सभी शनिग्रहकी प्रदक्षिणा करते हैं । ८ चन्द्रमा इसे रातको प्रकाश देते हैं, हमारी पृथिवी सूर्यकी एक प्रदक्षिणा ३६५ दिन, ५ घंटे, ४९ मिनिट, १२ सेकंदमें पूरी करती है, और शनिग्रह १०, ७५९ दिनोंमें ! इसी कारण भारतीय ज्योतिषियोंने इसे शनैश्चर = शनैः शनैः = आहिस्तां आहिस्ता चलनेवाला नाम दिया ।

८. आठवीं माला सूर्यके गलेमें Uranus = युरेनस् ग्रहकी है । यह सूर्यसे १,८००,०००००० मील दूर रहते हुए उसकी प्रदक्षिणा किया करता है, इसका व्यास पृथि- वीके व्याससे लगभग ४ गुणा बडा है । और इसे ४ चांद

रात्रिको प्रकाश देते हैं, सन १७८१ ई० में हरशेल = Sir William Herschel नामक पाश्चात्य ज्योतिषीने इसे ढूंढ निकाला था।

९. नव्वी और सबसे लंबी ग्रहमाला सूर्यने Neptune नेप्चून् ग्रहकी धारण की है, जो कि लगभग २,७८,-००००००० मील सूर्यसे दूर रहता हुआ सूर्यकी प्रदक्षिणा किया करता है। यह सूर्यकी एक प्रदक्षिणा १६० वर्षोंमें पूरी करता है! इसे एक ही चांद रातको प्रकाश देता है।

ये हैं पाश्चात्य ज्योतिषियोंके नवग्रह जो सूर्यकी प्रदक्षिणा निरंतर करते रहते हैं। भारतीय ज्योतिषियोंके नव ग्रह निम्न प्रकार हैं—

सूर्यश्चंद्रो मंगलश्च बुधश्चापि बृहस्पतिः
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहा नव ॥
आपटेसे ॥

अरबी भाषामें 'सय्यार' कहते हैं 'पथिक' को, फारसीमें 'सय्यारा' = पथिक नाम है 'ग्रह' का! क्यों न हो, सदा गतिमान् जो रहता है। × इस कारण भी सूर्यकी गणना ग्रहोंमें हो सकती है। परंतु भारतीयोंने तो उसे ग्रह = घर = रहनेका स्थान भी माना है, वेदने इसे मुक्ति-स्थान ठाना है-स्वर्ग = स्वशक्तिसे गतिमान् जाना है। यही गोलोक, पितृलोक, मोक्ष, वैकुंठ है। डिसेम्बर १९५१ में एक आंग्ल ज्योतिषीने लिखा है कि सूर्यको अग्निगोला मानना भ्रम है, जो शीघ्र ही दूर हो जाना चाहिए! कदाचित् इसी कारण भारतीय ऋषियोंने सूर्यको आठ वसुओंमें एक माना है। वसु = बसने बसानेवाला, या बसने वा रहनेयोग्य।

६ शंका—'प्रदक्षिणा' का अर्थ क्या है? प्रदक्षिणा क्यों दी जाती है? कौन किसकी करता है?

समाधान— प्रदक्षिणा = प्र+दक्षिण्+आ = चारों ओर [किसी पूज्य पदार्थको]+अपने दक्षिण वा दहने हाथकी ओर रखते हुए = घूम जाना। बाएंसे दाएंकी ओर चक्कर लगाना = Walking from left to right, जैसे कि सप्त ऋषि ध्रुव तारेकी प्रदक्षिणा करते हैं। 'प्रदक्षिणा' का अर्थ 'सादर परिक्रमण' है। नैसर्गिक शिष्टाचार है। इसके अनुसार पुत्र पितामाताकी अंश अंशी-की, उत्पन्न उत्पादककी प्रदक्षिणा किया करता है। मूर्ति पूजक मूर्तियोंकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, परंतु यह वेद विरुद्ध है।

७ शंका— आप 'प्रदक्षिणा' का अर्थ 'सादर परि-क्रमा' करते हैं, नवग्रह सूर्यकी प्रदक्षिणा करते है, परंतु ये तो जड = निर्जीव पदार्थ हैं। इनमें आदर बुद्धि कहांसे आ सकती है?

समाधान— इस लेखमालामें साकार सूर्यको ही वेद सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध कर रहे हैं, सूर्य चेतन है तो उससे उत्पन्न सृष्टि भी चेतन ही होनी चाहिए। हम अपने व्यवहारकी सुविधाके लिए सृष्टिको चर-अचर, जंगमस्थावर, सजीव-निर्जीव विभागोंमें भले ही विभक्त करते रहें, परंतु वस्तुस्थिति ऐसी है कि आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवीका अणु अणु सूर्यकी चेतन शक्ति से सचेत है। इनकी चेतनाका अनुभव हमें खुले आकाशमें फिरनेसे, प्राणायाम करनेसे, अग्नि उपासनासे, जल औषधि वनस्पतियोंके सेवनसे प्रत्यक्ष आता रहता है। फिर भला इन्हें हम चेतना रहित किस प्रकार कह सकते हैं? वृक्ष 'जड' हैं अर्थात् वे Motionless = अचल हैं, Senseless = ज्ञानरहित हैं, Paralyzed = जिनकी दसों इन्द्रियां सुन्न हुई हैं। क्या इसका यह अर्थ है कि उनमें चेतना वा जीवन शक्ति नहीं? ? इसी प्रकार 'स्थावर' का मुख्य अर्थ Stationary वा Immovable = अचल वा स्थावर ही है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जो अचर वा स्थिर है वह सूर्यकी चेतना वा जीवन शक्तिसे वञ्चित है। ऐसा होता तो धातुओं वा खनिजद्रव्यों-का सेवन करनेसे रोगनिवारण होकर शरीरमें नव चैतन्य कदापि उत्पन्न न होता।

वै० धर्मके जून १९५१ के अंकमें 'ओ३म्' नाम सूर्य-का ही है, ऐसा सिद्ध किया गया है। जुलई १९५१ के अंकमें वैदिक संध्याके मंत्रोंसे सिद्ध किया गया है कि सूर्य ही सृष्टिका अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। वहां इन्द्रिय-स्पर्श मंत्रका अर्थ कुछ इस प्रकार किया गया था—

× ऋग्वेद ५।५०।५४ में सूर्यको इसी कारण आतिथिः भी कहा गया है।

( ॐ वाक् वाक् ) सूर्य वागेन्द्रिय और वाक् शक्ति है ( ॐ प्राणः प्राणः ) सूर्य नासिका और प्राण शक्ति है, ( ॐ चक्षुः चक्षुः,) सूर्य आंख तथा दृष्टि वा दर्शन शक्ति है, ( ॐ श्रोत्रम् श्रोत्रम् ) सूर्य कान तथा श्रवण शक्ति है, ( ॐ नाभिः ) सूर्य सृष्टिका तथा मेरे शरीरका केन्द्र है, ( ॐ हृदयम् ) सूर्य मेरा हृदय, मन, मेरी जीवात्मा, तथा वेद है, ( ॐ कण्ठः ) सूर्य वा ॐ मेरा कण्ठ है, ( ॐ शिरः ) सूर्य मेरा शिर है, ( ॐ बाहुभ्याम् यशो बलम् ) ॐ वा सूर्य मेरी बाहुओंके लिए यश और बल है, ( ॐ करतल करपृष्ठे ) ओम् वा सूर्य मेरे हाथकी हथेली और हाथकी पीठमें है॥ वेदके आधारपर ऋषि दयानन्दकृत मंत्र ॥

पाठको ! यहां स्वयं ऋषि दयानन्द ' जड मानेजानेवाले शरीरके अंग प्रत्यंगको ॐ वा सूर्य सिद्ध कर रहे हैं, अक्षरशः अर्थ यही तो है और देखिए ! ' वेदामृत ' के पहले संस्करणमें द्यौः शान्तिः ॥ वा० य० ३६।१७ मंत्र था,। दूसरे संस्करणमें इसके स्थानपर पृथिवी शान्तिः ॥ अ० १९।९।१४ रखा गया है । इसका अर्थ स्वामी वेदानन्दजीने इस प्रकार किया है—

" हमारे लिए पृथिवी लोक शान्तिप्रद हो । अन्तरिक्ष लोक शान्तिमय हो । द्युलोकमें शान्ति हो । जल शान्तिकारक हों । ओषधियां वनस्पतियां सुख देनेवाली हों इत्यादि । "

कहिए जी ! जो आर्यसमाज सुखदुःख शान्तिदाता ' निराकार परमात्मा ' को ही मानता है, उसीके महोपदेशक पृथिवी आदि जड पदार्थोंसे शान्ति सुखकी याचना कर रहे हैं वा नहीं ? क्यों न करें-वेदका सिद्धान्त यही है । ऐसे ऐसे अर्थ करते हुए भी आर्यसमाज सूर्यको सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण नहीं मानता— यही अचम्भा है ।

इस अवस्थामें जब कि प्रकृतिके पांचों तत्व सूर्य शक्तिसे प्रभावित हैं, हम सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेवालों ग्रहों आदिको किस प्रकार चेतना रहित कह सकते हैं ? ध्रुवकी प्रदक्षिणा करनेवाले सात तारे सप्तऋषि=मंत्र वा रहस्यको जाननेवाले कहलाते हैं— क्यों ? विचारिए ! यही उपरोक्त सिद्धान्त यहां भी प्रत्यक्ष हो रहा है । अर्थात् ये सातों तारे ध्रुवसे उत्पन्न हुए हैं, इसीलिए ध्रुवकी प्रदक्षिणा करते हैं । उत्पन्न पदार्थ उत्पादककी पूजा करे यह सिद्धान्त है । जगत्को समझानेके लिए आकाशमें सूर्यदेवने अपना तथा अपनेसे उत्पन्न सृष्टिका चित्र खैंचा है— देखो और सिद्धान्त समझो ! इसे आंग्ल भाषामें जो SOLAR-SYSTEM = 'सूर्यके अंगोंका चित्र' नाम मिला है वह युक्ति युक्त ही है ।

८ शंका— पुत्र माता—पिताकी, अंश अंशीकी, उत्पन्न उत्पादककी प्रदक्षिणा करके पूजा करे इसका कोई दृष्टांत दीजिए । वेद प्रकृति पूजा सिखाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है ।

समाधान— कथा है कि कार्त्तिकेय और गणपतिकी बुद्धिमत्ताकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे उनके पिता शिवजीने कहा— " पुत्रो ! तुम दोनोंमेंसे जो भी दौडकर पृथिवीकी प्रदक्षिणा डालकर पहले यहां आ पहुंचेगा, उसे उपहार दूंगा " पिताकी आज्ञा पाकर लंबोदर स्थूलकाय गणपति तो मौन धारे बैठे रहे, परंतु कार्त्तिकेयजीने पहली दौड ९ करोड मीलकी शिवलोक = सूर्यलोकसे पृथिवी लोकतक लगाई, फिर पृथिवीकी प्रदक्षिणा की और शिवलोकको जानेवाला ९ कोटि मीलका प्रवास आरंभ किया । कई दिनोंकी थकावटसे चकनाचूर हुए जब समीप आ पहुंचे, तो गणपतिजी उठे, शिवजीको एक प्रदक्षिणा लगाई और हाथ पसार कर कहने लगे ' दीजिए उपहार ! ' इतनेमें कार्त्तिकेयजी भी आपहुंचे ।

स्पष्टीकरण-कार्त्तिकेय- क्या आप पृथिवीमाता*की प्रदक्षिणा कर आए हैं ?

गणपति— मैंने इतनी दूर जानेकी आवश्यकता ही नहीं देखी । पृथिवीमाता कहो, अदिति वा उषा कहो, प्रकृति कहो वा नवद्रव्योंमेंसे एक× कहो—इन सबके दर्शन मुझे परमपिता शिवजी वा सूर्य देवमें ही होते हैं- वह सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण जो हुआ अतः जिस प्रकार मूलमें पानी डालनेसे सारा वृक्ष प्रफुल्लित हो उठता

× माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । पर्जन्यः पिता... ॥ अ० १२।१।१२

* आकाश, वायु, जल, पृथिवी, काल, दिशा, आत्मा, मन ये वैशेषिकोंके ९ द्रव्य हैं ।

है, इसी प्रकार सूर्योपासना करनेसे वा स्कम्भकी उपासना करनेसे सब ३३ देव प्रसन्न हो जाते हैं ! भ्राताजी ! आपका परिश्रम व्यर्थ ही गया।

पाठको ! यह किसी पौराणिक कथाका सारांश लेखकके शब्दोंमें है। वेद प्रकृति-पूजा सिखाते होते तो कार्त्तिकेयजी अवश्य इनाम पाते। यहां तो पुरुष-पूजा सिद्ध हो रही है। परंतु वस्तुत: आप जिस प्रकार सृष्टिमें माता-पितामें स्थान भेद बता सकते हैं वैसे निसर्गमें सूर्यसे उषा, आदित्यसे अदिति, पुरुषसे प्रकृतिमें भिन्नता नहीं दर्शा सकते। इसीको जाननेसे गणपतिने विजय पायी। प्रकृतिको आंग्ल भाषामें Matter = मातर. वा मातृ कहते हैं। वेदमें अर्थ हैं मापनेवाला, उत्पन्न करनेवाला, रचयिता- स्त्रीलिंग नहीं अपितु पुल्लिंग ! अब व्याकरणने भी 'सिद्ध किया कि मातृ तथा मातरः उभयलिंगी है। * वेदमें सूर्यसे उषाकी उत्पत्ति बताई गयी है, तो बाइबल और कुर्आन में भी आदमसे हव्वा की उत्पत्ति लिखी हुई है। सारांश प्रकृति पुरुषके दृश्य वा स्पृश्य भागका ही नाम है— सृष्टिनिर्माणमें साधन वा साधनीभूत पदार्थ है + जो त्रिकालमें पुरुषसे व्याप्त रहता है। प्रकृति पुरुषकी शरीर अवस्थाका नाम है। निसर्गमें पुरुष वा सूर्यसे उसका शरीर कभी पृथक नहीं होता-इसीलिए वह 'सत्यम्' आदि कहलाता है। अब बताइए कि वेद यदि सूर्य-शरीरकी पूजा सिखाता है, तो उसमें दोष क्या आता है ? क्या निराकारवादी हवनकी समाप्ति पर अग्निको हाथ नहीं जोडते ? वा माता-पिता गुरुजनोंके चरण नहीं छूते ? क्या वे उनके शरीरको देखकर 'नमस्ते' नहीं करते ?

इस प्रकार ग्रहों की चालसे भी साकार सूर्य ही उपास्य सिद्ध होता है, निराकार परमात्मा नहीं ! इसीलिए ऋ० ७।३२।२३ में इन्द्र वा सूर्य अश्वायन्तः = किरणोंसे घिरा हुआ तथा गव्यन्तः = पृथ्व्यादि ग्रहों, तथा कर्मेन्द्रियोंमें बसा हुआ, कहलाता है-- देखो मन्त्र दिसम्बर १९५१ के अंकमें।

**सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामि साकार सूर्य है, निराकार परमात्मा नहीं !**

पाठक देखें कि उपरोक्त विशेषण वेदके अनुसार साकार सूर्य पर घटते हैं। वह सत्=प्रकृति+चित्=जीव+आनंद= परमात्मा स्वरूप है, वही ग्रहोंको वा सृष्टिको धारण किए हुए है इत्यादि परंतु आर्यसमाजने ये सभी विशेषण सूर्यदेवसे छीनकर अपने कल्पित निराकार परमात्मा' पर चढाए हैं— देखो आर्यसमाजका नियम २. परंतु इनका समर्थन न वेद करता है, न भुगोल खगोल शास्त्री।

पाठको ! ऋग्वेद २।१२।९ में आए प्रतिमानं पदपर शंका-समाधानोंके कारण बडा ही विस्तार हो चुका, अतः यहीं समाप्त करता हूं। आगे भी इसी पदको लिए हुए कई मंत्रोंका विचार करना है। [ अपूर्ण ]

* पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ॥ गीता ९।१७ ॥

× प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ गीता ४।६ ॥

# पुस्तक परिचय

## १ भक्ति-बोध  ले० रामचन्द्र बी. ए.

प्राप्तिस्थान:— राम-निवास, अम्बाला शहर।

पृष्ठ संख्या ४२८ (मूल्य १॥) रु.

पुस्तकके आरम्भमें लेखकने अपनी इस कृतिके प्रकाशनका अभिप्राय इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—

'इसके लेखकका यह विश्वास है कि जिस दुःखदायी दशामेंसे हमारा देश इस समय गुजर रहा है, उसका एकमात्र इलाज यही है कि जनताके हृदयोंमें परिवर्तन लाया जाए। इन भयङ्कर दुराचारों (Corruptions) को कानूनसे कभी भी रोका नहीं जा सकता। बल्कि हमारा अनुभव तो यह बताता है कि जितने कड़े या पेचीदा कानून बनते हैं उनको तोड़नेके लिये उतने ही चतुर लोग भी बन जाते हैं। हार्दिक सुधार ही इन सबका एकमात्र इलाज है। इस बातको ध्यानमें रखकर ही यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें यह प्रयत्न किया गया है कि लोग भोगाभिमुखी होना छोड़कर ईश्वराभिमुखी हों। सब विषयोंको इस प्रकार छुआ गया है कि उनमें सम्प्रदायवादका—जो आजकल सारी बुराइयोंकी जड है— गन्ध भी नहीं है। अतः इसे सभी मतावलम्बी अपना सकते हैं और ध्यानपूर्वक पाठ करनेसे लाभ उठा सकते हैं।'

पुस्तकका लेखन अत्यन्त मनोयोगसे हुआ है। माननीय लेखक एक अनुभवी एवं मौलिक विचारोंके लेखक हैं। अतः इस दृष्टिसे पुस्तककी लोकोपयोगिता स्वतः सिद्ध है।

## २ आद्यगीता (व्यासकृत)

संशोधक— डॉ. आनन्दचैतन्य।

प्राप्तिस्थान— विज्ञानशाला ओंकारेश्वर (मध्यभारत)

मूल्य ७-०-० रु.

यह ग्रन्थ अनुसन्धानात्मक दृष्टिसे अद्वितीय है। पुस्तकका महत्व उसकी विषयानुक्रमणिकापर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट हो जाता है। अतः उसका उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं।

१ शंका उत्पन्न होनेके कारण। २ गीताके अन्तर्गतप्रमाणोंका विचार। ३ गीताके अन्य क्षेपक श्लोकोंका विचार। ४ महत्वके अन्य क्षेपक श्लोक। ५ गीताके बाह्य प्रमाणोंका विचार। ६ क्षेपक श्लोकोंका विचार। ७ 'श्री कृष्ण उवाच' के कम किये हुए व्यासकृत श्लोक। ८ क्षेपक विषयक विवेचनका निष्कर्ष। ९ श्री कृष्णके मुखके श्लोक। १० अर्जुनके मुखमें बढाये हुए श्लोक। ११ 'श्री कृष्ण उवाच' में बढाये हुए ८ श्लोक। १२ संजयके मुखमें बढाये हुए ७ श्लोक। १३ श्री कृष्णजीके वक्तव्यके शेष ४६ श्लोक। १४ संजयके मुखके कम किये हुए ३३ श्लोक। १५ गीताके मूल अध्याय कितने थे? १६ गीतामें बढाये हुए नये अध्याय। १७ गीताका आखिरी अध्याय। १८ गीताके अध्यायोंकी पुनर्रचना। १९ गीताकी नवीन विषय-संगति। २० गीताकी नवीन संशोधित विषय-रचना (नक्शा)

ऐसा गवेषणापूर्ण ग्रन्थ प्रत्येक विद्वान्, प्रत्येक पुस्तकालय एवं प्रत्येक शिक्षणालयके लिये अवश्य ही संग्रहणीय है।

## ३ विदेह गीताञ्जलि

लेखक— आचार्य विद्यानन्द विदेह।

प्राप्तिस्थान— वेदसंस्थान केसरगंज, अजमेर मूल्य १-४-०

इस पुस्तकमें आचार्य विदेहजीके २६३ गीतोंका संकलन किया गया है। प्रतिदिन बढती हुई आचार्यजीकी ख्यातिका यह प्रमाण है कि जनता उनकी कृतियोंके प्रति विशेष रूपसे आकर्षित हो रही है। जिस लगन, त्याग और सेवाभावसे आचार्यजी कार्यक्षेत्रमें अग्रसर होते जा रहे हैं, वह अभिनन्दनीय है। गीतोंका यह संग्रह जनताके लिये मानसिक तृप्ति एवं मनोविकासके लिये अवश्य ही एक सफल साधन सिद्ध होगा। संग्रहमें सभी कुछ सुन्दर है।

## ४ संस्कृत स्वयं शिक्षक

लेखक- पं. रामचन्द्रजी आर्य मुसाफिर शास्त्री साहित्यरत्न

पं. जयनारायणजी शास्त्री विद्याभास्कर

प्राप्तिस्थान- पं. रामचन्द्र आर्य मुसाफिर डी. ए. वी. हाईस्कूल अजमेर। मूल्य ०-५-० आने

बिना गुरुके संस्कृत सिखानेवाली यह अद्वितीय पुस्तक है। अनुभवी एवं विद्वान् लेखकोंद्वारा सम्पादित यह पुस्तक संस्कृत सीखनेवालोंके लिये सचमुच बहुत उपयोगी बन पडी है। जिस शैलीपर यह रचना हुई है वह बहुत ही सफल सिद्ध हुई। बालकोंके लिये संस्कृत ज्ञानार्थ यह पुस्तक अत्यन्त लाभकारी है। ऐसी पुस्तकोंका अधिकाधिक प्रचार होना चाहिये।

ॐ

वैदिक व्याख्यान माला।
चतुर्थ व्याख्यान।

# श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घ आयु

## मनुष्य जीवनका उद्देश्य

मनुष्य इस पृथिवीपर जन्म लेता है, उसका विशेष हेतु है। वह हेतु यह है कि इसके अन्दरकी अपूर्णता दूर हो और यह पूर्ण विकसित हो जाय। पूर्ण विकासका अर्थ पुरुषोंमें उत्तम पुरुष बनना, अथवा पुरुषोत्तम बनना। मनुष्य इस सिद्धिको प्राप्त करनेके लिये इस पृथिवीपर जन्म लेता है और जबतक यह पुरुषोत्तम नहीं बनता, तबतक इसको जन्म लेना अनिवार्य ही है। वारंवार जन्म लेकर, अनेक प्रकारके उच्च नीच अनुभव लेकर, उठता और गिरता हुआ, यह प्रगति करनेकी इच्छा करता है। और प्रगति करता भी है।

## देवताका आदर्श

मनुष्यकी इस उन्नतिमें सहायता करनेके लिये वैदिक-धर्म सिद्ध है। वैदिक सूक्तोंमें अनेक देवताओंके वर्णन हैं। वे मनुष्यके सामने आदर्श रखे हैं। इन देवताओंके आदर्श सामने रखकर मनुष्य देवता सदृश वर्तन करता हुआ आगे बढता है। उपासक मनुष्य (देवयन्) देवताके सदृश बननेका यत्न करे, देवताके गुण अपने जीवनमें ढाले, और देवताके सदृश गुणोंवाला बने। वेदमें अनेक देवताएं हैं। उनमें जो इसको अच्छा आदर्श है ऐसा प्रतीत हो जाय, वह आदर्श मनुष्य अपने सामने रखे। ऐसा प्रयत्न करनेवाला जो होता है उसको (देवयन्) 'देवताके सदृश बननेका प्रयत्न करनेवाला' कहते हैं।

जो नाम परमात्माके हैं वे सब नाम जीवात्माके भी हैं। परमात्मा परिपूर्ण है और जीवको परिपूर्ण बनना है। पर परिपूर्ण बननेकी गुप्तशक्ति इसमें है। जैसी अग्नि और चिनगारी है। चिनगारी तो अत्यंत अल्प होती है, पर वह सूखे घासपर गिरनेसे बडे दावानल बननेकी शक्ति अपने अन्दर रखती है। वैसा ही मनुष्यका आत्मा पूर्णता प्राप्त करके पूर्ण शक्तिसे विकसित हो सकता है। यही उसकी पूर्ण होनेकी गुप्तशक्ति है। इस जीवकी पूर्णताकी अवस्थाको 'ब्राह्मी' स्थिति कहते हैं। इस अवस्थापर प्रत्येक मनुष्यका अधिकार है, पर वह जीव इस अवस्थाको कब प्राप्त करेगा, इसका आज पता नहीं लग सकता।

## आत्माकी कर्मशक्ति

आत्मा जीव है। आत्माका अर्थ (अतति) 'सतत प्रयत्न करनेवाला' है। 'अत् सातत्यगमने' इस धातुसे आत्मा पद सिद्ध होता है। 'सतत गमन, सतत प्रगति, सतत प्रयत्न करनेवाला जो है, वह आत्मा है। सतत प्रयत्न-शीलताका गुण आत्मामें है। अपनी परिपूर्ण उन्नति प्राप्त होनेतक प्रमाद न करते हुए सतत प्रयत्न करनेका गुण इस आत्मामें है। अखण्ड प्रयत्न करना, एक वार फसनेपर पुनः पुनः यश मिलनेतक प्रयत्न करते रहना, यह आत्माका निज स्वभाव है।

अब आत्माके अन्य नामोंका थोडासा विचार करते हैं।–

ॐ क्रतो स्मर। कृतं स्मर।

वा० यजु० ४०।१५; काण्व ४०।१७; ईश० १७

'हे (क्रतो) कर्म करनेवाले जीवात्मन्! तू (कृतं स्मर) अपने किये कर्मोंका स्मरण कर, तथा (ओं स्मर

परमेश्वरका स्मरण कर। ' इस तरह जीवकी उन्नतिके लिये आदेश वेदमें दिया है। यहां किये हुए कर्मोंका स्मरण कर ऐसा कहा है। तथा इस जीवात्माका नाम 'क्रतु' कहा है। जिसका स्वभाव कर्म करनेका होता है, उसका नाम क्रतु होता है। यहां भी आत्माका स्वभाव 'कर्म करनेका है, यह बात इस पदसे स्पष्ट हो गयी है।

## शतक्रतु इन्द्र

इसी तरह इन्द्रके नामोंमें 'शत-क्रतु' नाम सुप्रसिद्ध है। सौ वर्ष जीवित रहकर सौ क्रतु करनेवाला इन्द्र है। यह नाम इन्द्रकी स्वभावसे कर्मण्यता बता रहा है। इन्द्र नाम (इन्-द्र) 'शत्रुका विदारण करनेका पुरुषार्थ करनेवाला' यह अर्थ बता रहा है। इसमें कर्म करके विजय प्राप्त करनेका सामर्थ्य दीखता है। इन्द्र पद जैसा परमात्माका वाचक है, वैसा ही जीवात्माका भी वाचक है। इसी 'इन्द्र' से 'इन्द्रिय' पद 'इन्द्रकी शक्ति' के अर्थमें बना है। ये इन्द्रियाँ प्रत्येक मनुष्यके शरीरमें अनेक हैं। प्रत्येक इंद्रिय इन्द्रकी शक्ति है, इसलिये इन्द्रियोंके पीछे इन्द्रका होना स्वयं सिद्ध है। इससे भी इन्द्र पद जीवात्माका वाचक है, यह बात सिद्ध होती है। गीतामें भी-

अहं क्रतुः, अहं यज्ञः। गीता० ९।१६

'मैं क्रतु हूं, मैं यज्ञ हूं' ऐसा कहा है। प्रारंभमें यह परमात्माका वर्णन है, परंतु जीवात्मा भी ब्राह्मी अवस्थामें इस स्थितिको प्राप्त होता है, इसलिये यह भी क्रतु और यज्ञ है, अर्थात् इसका भी स्वरूप 'कर्म' है। जिसका स्वभाव कर्म करनेका है उसीको 'कर्म कर' ऐसी आज्ञा की जा सकती है। जिसका स्वभाव कर्म करनेका नहीं है, जो कर्म कर नहीं सकता, उसको कर्म करनेकी आज्ञा किस तरह की जा सकती है? सब धर्मशास्त्र जीवको सत्कर्म करनेकी आज्ञा देते हैं, इसलिये सब धर्मशास्त्र जीवकी कर्मशक्तिको मानते हैं। इसलिये कहा है—

## कर्मका तत्त्व

यज्ञो वै कर्म। श० ब्रा० १।१।२।१

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेनेति। श० ब्रा. १४।६।२।१४

वीर्यं वै कर्म। श० ब्रा. ११।५।४।५

कर्माणि धियः। गो० पू० १।१२

यो वै कर्म करोति, स एव तस्योपचारं वेद। श० ब्रा० ६।५।४।१७

कृतं संपद्यते चरन्। ऐ० ब्रा. ७।१५

"यज्ञ ही कर्म है, जो मनुष्यको करना चाहिये। पुण्य कर्म करनेसे मनुष्य पवित्र बनता है और पापकर्म करनेसे पापी बनता है। कर्म ही शक्ति है। बुद्धियां ही कर्मोंमें परिणत होती हैं। जो कर्म करता है वह उसका उपचार जानता है। कृतयुग कर्म करते रहनेसे बनता है।" यहां इन वचनोंमें कहा हुआ कर्मका तत्त्व बडा मननीय है।

(कर्म वै वीर्यं) कर्म ही बल पराक्रम अथवा सामर्थ्य है। यह सत्य है। आज भी जो उत्तम कर्म करता है, वह सामर्थ्यवान् बनता है। कर्म नहीं करता वह पीछे पडता जाता है। इसलिये मनुष्यको उचित है कि, वह अपनी कर्म करनेकी शक्ति बढावे और दिन प्रतिदिन उत्तमसे उत्तम कर्म करता जाय। उसका प्रभाव बढता ही जायगा। मनुष्य (पुण्येन कर्मणा पुण्यो भवति) पवित्र कर्मसे पवित्र बनता है, श्रेष्ठ कर्म करनेसे श्रेष्ठ बनता है। और पापमय कर्म करनेसे पापी बनता है (पापेन पापः भवति) दुष्ट कर्म करनेसे दुष्ट बनता जाता है। जैसा कर्म करता है वैसा बनता है। जैसा कर्म करता है वैसे संस्कार उत्पन्न होते हैं, जिससे वह वैसा बनता जाता है। इसलिये दक्षतासे कर्म करने चाहिये।

## बुद्धि और कर्म

(कर्माणि धियः) कर्म बुद्धिरूप होते हैं और बुद्धियाँ कर्मरूप बनती हैं। जिसकी जैसी बुद्धि होती है, उससे वैसा कर्म बनता है। इसलिये वेदमें 'धी' का अर्थ 'बुद्धि और कर्म' दोनों हैं। उत्तम बुद्धिमान उत्तम कर्म करता है और उत्तम कर्म करनेवाला कर्म करनेके अभ्याससे उत्तम बुद्धिमान बन जाता है। इस तरह बुद्धि और कर्मका साहचर्य है यह जानकर मनुष्यने अपनी बुद्धि बढाकर प्रशस्त कर्म करनेकी शक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये।

## कृतयुग निर्माण करना

अपने कर्मोंके द्वारा हमें यहां (चरन् कृतं संपद्यते) कृतयुग निर्माण करना चाहिये। सत्ययुग करना अथवा कलियुग निर्माण करना अपने कर्मोंके आधीन है। लोग

समझते हैं कि, यह कलियुग है। पर कलह, आपसमें झगडे, करनेवालोंके लिये वही कलियुग होता है और आपसकी संगठना, एकता, समता करनेवालोंके लिये वही कृतयुग होता है। हमने जो (कृतं) किया हुआ कर्म है, वह अच्छा कर्म हुआ, तो वही कृतयुग होता है, और उसमें दोष होने लगे, तो वही समय कलियुग होता है। यह सब अपने कर्मोंपर निर्भर है।

मनुष्यका स्वभाव कर्म करनेका है। मनुष्य प्रतिक्षण कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। यही गीतामें कहा है-

न हि कश्चित् क्षणमपि।
जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। गीता० ३।५

'कोई मनुष्य कभी भी कर्म न करता हुआ रहता नहीं।' प्रतिक्षण कुछ न कुछ करता ही रहता है। क्योंकि मनुष्यका स्वभाव कर्म करनेका है। कोई कहेगा कि, मैंने सोकर समय बिताया, कुछ भी कर्म नहीं किया। पर वह भूलता है, वह उस समय सोकर रहनेका कर्म करता था। जिस अवस्थामें वह रहता है, उस अवस्थाका कर्म उससे होता रहता है। इसलिये यह सत्य है कि, कोई मनुष्य कर्म किये विना रह नहीं सकता। क्योंकि शरीरका स्वभाव ही उससे कर्म कराता रहता है।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि सन्।
गीता० १८।६०

'अपने कर्मोंसे बने स्वभावसे बंधा हुआ तूं जो नहीं करना चाहता है, वही अवश होकर करता है।' इतना स्वभावका बल है। मनुष्यका स्वभाव ही कर्म करनेका है। अतः मनुष्यसे कर्म होता ही रहेगा। कर्म करना या न करना मनुष्यके आधीन नहीं है, कुछ न कुछ कर्म तो उससे होता ही रहेगा। यदि कर्म होना ही है, तब तो मनुष्यको चाहिये कि, वह अच्छा ही कर्म करे। 'मैं कर्म नहीं करूंगा' यह मनुष्यका संकल्प कभी सिद्ध नहीं हो सकेगा, क्योंकि वह संकल्प मनुष्यके स्वभाव धर्मके सर्वथा विरुद्ध है। मनुष्य इच्छासे करे अथवा मनुष्यसे निज स्वभावसे हो जाय, परंतु मनुष्यसे कर्म होता ही रहेगा। फिर वह अच्छा ही कर्म क्यों न करे? इसलिये कहा है कि—

## कुशलतासे कर्म करो

योगस्थः कुरु कर्माणि ॥ ४० ॥
योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥ गीता० २

'योगका आश्रय करके कर्मोंको करता जा। कर्मोंके अन्दरकी जो कुशलता है, उसका नाम योग है।' अर्थात् कर्म करनेको कुशलता प्राप्त कर और उत्तमसे उत्तम कुशलतापूर्वक उत्तमोत्तम कर्मोंको कर। कर्म करने हैं, तो उत्तम कुशलतासे ही करने चाहिये। ऐसे वैसे नहीं करने चाहिये। कर्ममें कुशल मनुष्य ही श्रेष्ठ समझा जाता है। कुशलतासे हीन मनुष्य कभी श्रेष्ठ नहीं होता।

यहां तक यह सिद्ध हुआ कि, मनुष्यको कर्म तो करने ही चाहिये और वे कुशलतापूर्वक करने चाहिये। वेद कहता है-

## श्रेष्ठतम कर्म करो

देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे,
आप्यायध्वं,० अनमीवा अयक्ष्माः, मा व-
स्तेन ईशत, माऽघशंसः॥ वा०य०, काण्व यजु १।१

'सविता देव आपको श्रेष्ठतम कर्म करनेके लिये प्रेरणा करे। इन कर्मोंको करके आप उन्नतिको प्राप्त हो जाओ, आप नीरोग हो जाओ, तथा यक्ष्मरोगसे दूर रहो। आप पर चोर तथा पापोंका राज्यशासन न हो।' यह वेदका उपदेश कितना महत्त्वका है। यह उपदेश मनन करने योग्य है और सदा स्मरण करने योग्य है।

श्रेष्ठतम कर्म-सबको करना चाहिये। अपनी अभिवृद्धि होगी ऐसे ही कर्म करने चाहिये। नीरोगिता बढानी चाहिये। तथा अपने ऊपर चोर और पापीका शासन न हो, ऐसा अपनी सुरक्षाका प्रबंध करना चाहिये। यह सब श्रेष्ठतम कर्म ही हैं।

१ आप्यायनं— अभ्युदय साधक कर्म,

२ अनमीवत्वं — नीरोगिताकी स्थापना,

३ अयक्ष्मत्वं— क्षयरोगसे दूर रहना,

४ स्तेनशासनदूरीकरणं— चोरका शासन दूर करना, अथवा न मानना और

५ अघशंसशासनविनाशनं-- पापीके शासनको दूर करना।

ये श्रेष्ठतम कर्मोंमेंसे थोडेसे कर्म यहां गिनाये हैं। ' आप्यायन '-- तो वैयक्तिक भी हो सकता है और सार्वजनिक भी हो सकता है। एक व्यक्तिकी उन्नति और सार्वजनिक जनसमूहकी उन्नति करनेमें व्यक्ति और समाजका कल्याण है। ' अनमीवत्वं अयक्ष्मत्वं '— यह वस्तुतः सार्वजनिक आरोग्य रक्षणसे ही सिद्ध होनेवाला है। ग्रामकी आरोग्य व्यवस्था अच्छी रही, तो व्यक्ति अपने प्रयत्नसे अपना आरोग्य रख सकता है। पर ग्रामका ग्राम ही रोगी रहा, जलवायु खराब रहे तो व्यक्ति अनेक प्रयत्न करनेपर भी अपना आरोग्य सभालनेमें असमर्थ ही रहेगा। अर्थात् यह आरोग्य रक्षणका कार्य सार्वजनिक कार्य है। '**स्तेनशासन** तथा **अघशंसशासन** को दूर करना' ये कार्य तो सार्वजनिक तथा राजकीय हलचलसे ही होनेवाले हैं। ये वैयक्तिक कार्य हैं नहीं। अर्थात् यहां वेदने जो प्रशस्ततम कर्म गिनाये हैं, उनमें वैयक्तिक, सामूहिक, सार्वजनिक तथा राजकीय कर्मोंका समावेश है, यह बात यहां पाठकोंको अवश्य स्मरण रखनी चाहिये। अपना वैदिक धर्म व्यक्तिकी, समाजकी और राष्ट्रकी उन्नति करनेके आदेश देता है, यह बात यहां स्पष्ट हो गयी है।

## कर्मका विचार

अब प्रशस्ततम कर्मका विचार करना है।

प्रशस्ततम कर्म
|
प्रशस्ततर कर्म
|

| | |
|---|---|
| अकर्म | अकर्म |
| विकर्म | विकर्म |
| दुष्कर्म | सुकर्म |
| अप्रशस्तकर्म | प्रशस्तकर्म |

कर्म

कर्मके दो विभाग हैं, एक सुकर्म और दूसरा दुष्कर्म। सुकर्मका नाम प्रशस्तकर्म है और दुष्कर्मको ही अप्रशस्त कर्म कहते हैं। जो प्रशंसा योग्य सर्वजन हितकारी कर्म है। वह प्रशस्त है और जो निंदाके योग्य सर्वजनहितका नाश करनेवाला कार्य है, वह अप्रशस्तकर्म है। वह नहीं करना चाहिये।

## विकर्मका विचार

' विकर्म ' भी दो प्रकारके हैं। एक विरुद्ध कर्म अर्थात् व्यक्ति तथा समाजके हितका बिगाड करनेवाला दुष्कर्म और दूसरा विशेष अवस्थामें विशेष रीतिसे विशेष उपयोगी अतः व्यक्ति तथा समाजका विशेष हित करनेवाला जो होता है वह भी ' वि-कर्म ' कहलाता है। अर्थात् विरुद्ध कर्म करना नहीं चाहिये, परंतु विशेष हितकारी कर्म करना चाहिये।

## अकर्मका विचार

' अकर्म ' भी दो प्रकारके हैं। एक वह कि जो करने योग्य नहीं वह नहीं करना चाहिये। परंतु दूसरा अकर्म वह है कि जो व्यक्तिके ही केवल हित करनेवाले हैं जैसे स्नान, भोजन व्यायाम, स्वकीय संरक्षण, पोषण आदि जो केवल एक व्यक्तिके अस्तित्वके लिये आवश्यक होते हैं, परंतु जो सार्वजनिक हित नहीं करते, वे अकर्म हैं। ये अकर्म व्यक्तिको अपने अस्तित्वके लिये अवश्य ही करने चाहिये, परंतु सार्वजनिक दृष्टिसे इनका कुछ विशेष महत्त्व नहीं होता। इसलिये सार्वजनिक दृष्टिसे ये करनेपर भी न करनेके समान होते हैं, इसलिये ये अकर्म समझे गये हैं। परंतु व्यक्तिको अपने अस्तित्वको सुरक्षित रखनेके लिये ये करने ही चाहिये।

अकर्मका दूसरा एक विभाग है जो विशेष महत्त्वका है। जो कर्म करनेपर भी बाधक नहीं होते, दोष उत्पन्न नहीं करते, कर्म करनेपर भी कर्ता निर्दोष रहता है, कर्म न करनेपर जैसा रहता है, वैसा ही करनेपर भी अलिप्त रहता है, वे कर्म अकर्म कहलाते हैं। जिस तरह वर्णाश्रम धर्मानुकूल कर्म हैं, जो केवल जनताके उपकारके लिये किये जाते हैं। जैसे सैनिक सेनापतिकी आज्ञानुसार कार्य करते हैं, जो स्वयंसेवक केवल सेवाभावसे ही कर्म करते हैं। ऐसे कर्म कर्ताको बाधक नहीं होते, अतः ये अकर्म हैं। ये अकर्म बडे उपयोगी होते हैं। '**कृत्वापि न निबध्यते।**' '**कुर्वन्नपि न लिप्यते**' ( गीता ) कर्म करनेपर भी बाधा नहीं होती, कर्ता अलिप्त रह जाता है ऐसा जो

गीतामें कहा है तथा नैष्कर्म्य सिद्धिका जो वर्णन गीतामें है, वे सब इस प्रकारके 'अकर्म' के वर्णन हैं। गीताके ये दो पद 'विकर्म' और 'अकर्म' दो दो अर्थवाले होनेके कारण पाठकोंके लिये समझनेके लिये कठिन हैं और संदेह भी उत्पन्न करनेवाले हैं। अस्तु इन शब्दोंमें जिनका अर्थ उत्तम है, वे तो कर्म करने ही चाहिये, परन्तु जिनका अर्थ खराब है, वे कर्म करने नहीं चाहिये।

## प्रशस्ततमकर्म

अब प्रशस्ततकर्मका विचार करते हैं। प्रशंसा योग्य जो कर्म हैं, वेही करने चाहिये। वेदने तो 'प्रशस्ततम, श्रेष्ठतम कर्म करने चाहिये' ऐसा कहा है। जो प्रशंसा योग्य कर्म हैं वेही श्रेष्ठ कर्म हैं। 'श्रेष्ठतम कर्म' करनेका आदेश वेद दे रहा है। अर्थात् 'श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठतर कर्म और श्रेष्ठतम कर्म' ऐसी श्रेष्ठ कर्मोंमें भी तीन श्रेणियां हैं। उनमें सबसे श्रेष्ठ कर्म करने चाहिये यह वेदका कहना है।

सविता देवः श्रेष्ठतमाय कर्मणे प्रार्पयतु।

वा. य. १।१

सविता देव मनुष्यको कर्मोंकी प्रेरणा करता है, वह श्रेष्ठतम कर्मकी प्रेरणा करे। यह इस मंत्रका आदेश है। अर्थात् मनुष्य कर्म करेगा, तो वह श्रेष्ठसे श्रेष्ठ कर्म करनेका यत्न करे। यहां 'कर्म, अकर्म और विकर्म' ये कर्मके मुख्य तीन विभाग इससे पूर्व कहे गये हैं। व्यक्तिका जीवन निर्वाह करनेके लिये जो स्नान-भोजन-निद्रा आदि आवश्यक हैं, वे अकर्म हैं। ये करने ही चाहिये। ये न किये तो व्यक्ति नाशको प्राप्त होगी। पर इनके करनेसे सार्वजनिक महत्त्व कुछ भी नहीं है। इसलिये ये करनेपर भी न करनेके समान ही हैं। दूसरा विभाग विकर्मोंका है। ये विरुद्ध कर्म हैं। ये व्यक्ति और समाजका घात करनेवाले हैं। ये हानिकारक होनेसे ये किसीको करने योग्य नहीं है। जैसे ब्रह्मचर्याश्रममें व्यभिचार, गृहस्थाश्रममें दुराचार, अयोग्य आचार, समाजघातक कर्म आदि ये विरुद्ध कर्म किसीको कदापि नहीं करने चाहिये।

## सर्वजन हितकारी कर्म

अब शेष रहा 'कर्म'। वह कर्म वह है कि जो समाज, जाति तथा राष्ट्रका हित करनेवाला है। जिससे सब जनोंका कल्याण होता है। इसको यज्ञ कहते हैं। जिस कर्मसे सज्जनोंका सत्कार, समानोंकी संगठना और दीनोंका उद्धार होता है। वह यज्ञ है। सार्वजनिक कल्याणके कर्म तो सबको अवश्य करने चाहिये। यह 'श्रेष्ठतम कर्म' होने योग्य रीतिसे करने चाहिये यह इसका तात्पर्य है। अर्थात् अधिकसे अधिक सत्पुरुषोंका उत्तम रीतिसे सत्कार (देव पूजा) हो, सब जनोंका संगठन (संगतिकरण) हो, आपसका वैर दूर हो जाय, आपसकी फूट दूर होकर सबका संगठन तथा ऐक्य हो जाय, और (दान) दीनोंकी दीनता दूर करनेके लिये उनको योग्य सहायता प्राप्त हो जाय। मनुष्योंमें ज्ञान, वीरता, धन और कर्मप्राविण्य की निर्बलता रहती है। वह दूर हो जाय और मनुष्य पूर्णतासे दैन्यरहित हो जांय। ऐसे प्रयत्न करने चाहिये। इसका नाम श्रेष्ठतम कर्म है। ऐसे श्रेष्ठ कर्म करने चाहिये।

मनुष्यका स्वभाव कर्म करनेका है, इसीलिये उसको अत्यंत श्रेष्ठ कर्म करने चाहिये। ऐसा वह न करेगा, तो उससे तो कर्म होते ही रहेंगे, और उनका परिणाम उनको भोगना ही पडेगा। इसलिये मनुष्य अपनी ओरसे अधिक दक्षतापूर्वक प्रयत्न करके अत्यंत श्रेष्ठ कर्म करनेका यत्न करे। इसमें मनुष्यसे भूल न हो।

कुर्वन् एव इह कर्माणि।
जिजीविषेत् शतं समाः। वा० य० ४०२

'यहां कर्मोंको करते हुए ही सौ वर्ष जीवित रहनेकी इच्छा करनी चाहिये।' ऐसा वेद कहता है। 'यहां इस जगत्में अच्छेसे अच्छे कर्म करते रहो और सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करो। यहांका 'कर्माणि' पद 'श्रेष्ठतम कर्म' का वाचक है। अर्थात् अधिकसे अधिक श्रेष्ठ कर्म करते हुए, यहां सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करनी चाहिये।

## सौ वर्षकी आयु

यहां 'शतं समाः जिजीविषेत्' ऐसी वेदकी आज्ञा है। सौ वर्ष जीनेकी इच्छा मनुष्य किस समय कर सकता है? इसका विचार सबको करना चाहिये। 'जिजीविषा' अधिक या कम मेरी आयु हो यह इच्छा बालपनमें नहीं हो सकती, कुमारपनमें भी नहीं हो सकती। जिस समय

मनुष्य पूर्ण तरुण होता है, विद्यास्नातक होता है, भले बुरेका ज्ञान उसको होता है, उस समय वह अपनी स्वतंत्र प्रतिभासे इच्छा कर सकता है। यह विद्यास्नातक होनेका समय २० वे वर्ष आता है। बालपनके ८ वर्ष, विद्याध्ययन के १२ वर्ष मिलकर २० वर्ष होते हैं। बीसवें वर्ष वह विद्यास्नातक होता है, इस समय अथवा इसके पश्चात् वह अपनी स्वतंत्र प्रतिभासे अपनी इच्छा प्रकट कर सकता है, वह इच्छा यह है—

पश्येम शरदः शतम्।
जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतम्।
प्रब्रवाम शरद शतम्।
अदीनाः स्याम शरद शतम्।
भूयश्च शरदः शतात्॥ वा० य० ३६।२४
पूषेम शरदः शतम्।
रोहेम शरद शतम्।
भवेम शरद शतम्।

यहां 'जिजीविषेत्' यह जीवन किया है। दीर्घ जीवनकी इच्छा है। यह इच्छा २० वर्षका पूर्ण तरुण मनुष्य ही कर सकता है। इसलिये २० वें वर्ष १०० वर्ष जीनेकी इच्छा की, तो मृत्युके समयकी इसकी आयु १२० वर्षोंकी होती है। ज्योतिष शास्त्रने इसी कारणके लिये विंशोत्तरी गणित किया है। 'विंशति-उत्तर-शतं' यह १२० वर्षोंकी आयु है अर्थात् १२० वर्षोंकी मनुष्यकी आयु है। दूसरे गणिती लोग 'अष्टोत्तरी' गणित करते हैं, उनके मतसे १०८ वर्षकी आयु होती है। पर १२० वर्षोंकी मानवी आयु मानना युक्ति युक्त है। ८ वर्ष बालपनके १२ वर्ष विद्या अध्ययनके और १०० वर्ष पुरुषार्थके जीनेके मिलकर १२० वर्ष हुए। अपनी स्वतंत्र इच्छा मनुष्य उस समय करता है कि जिस समय वह पूर्ण स्वतंत्र होता है और मनुष्य विद्या अध्ययन समाप्त करके ही स्वतंत्र प्रतिभावान् होता है। इसलिये 'जिजीविषा' (जीनेकी इच्छा) बीसवें वर्ष, जिस समय वह पूर्ण विद्वान् होता है, उस समय की जा सकती है। बीसवें वर्षके पश्चात् मनुष्य शतायु होनेकी इच्छा कर सकता है और अपनी प्रयत्नपूर्वक इच्छासे उतनी आयु वह प्राप्त करता है।

## जीवन गण

जिजीविषा (जीनेकी इच्छा) यह जीवनगणका विषय है। मनुष्यको २० वर्षके पश्चात् सौ वर्ष जीवित रहना है, बीचमें ही मरना नहीं। परंतु यह जीवन केवल कृमिकीट जैसा जीना नहीं है। कौआ भी सौ वर्ष जीवित रहता है और अपने जीवनमें कुछ भी करता नहीं है। वैसा मनुष्य जीवे तो लाभ क्या है? इसलिये यह जीवन गण सूचित करता है कि मनुष्यको अपने जीवनमें क्या करना चाहिये-

## जीवगणके विषय

हम जीवनीय गणमें जो गिनना चाहिये, जिससे मनुष्यका जीवन सार्थ होता है, वह इन जीवनगणके मंत्रोंमें कहा गया है। (जीवेम) हम जीवेंगे, (भवेम) हम प्रभावी बनेंगे, (रोहेम) हम बढते रहेंगे, (पूषेम) हम हृष्ट पुष्ट होते रहेंगे, (पश्येम) हम देखते रहेंगे, (शृणुयाम) हम उपदेश सुनते रहेंगे, ज्ञान प्राप्त करते रहेंगे, (प्रब्रवाम) हम उपदेश करते रहेंगे, हम लोगोंको सन्मार्ग बताते रहेंगे, (अदीनाः स्याम) हम दीन दुर्बल नहीं होंगे और ये ही कार्य हम (भूयः शरदः शतात्) सौ वर्षसे भी अधिक जीवित रहकर करते रहेंगे। ये जीवनमें करनेके मुख्य कार्य हैं। जिससे मनुष्य जीवन सफल और सुफल हो सकता है वे ये कार्य हैं। इनका थोडासा अधिक स्पष्टीकरण यहां करना आवश्यक है।

(जीवेम) हम जीवेंगे, नीरोग तथा कार्यक्षम स्फूर्तियुक्त जीवन जीवेंगे, (भवेम) हम अपने जीवनसे विश्वपर प्रभाव डालेंगे, जिससे लोग कहेंगे कि, यह मनुष्य सचमुच जीवित था, जिससे उसके जीवनसे यह प्रभाव जनतापर हुआ, (रोहेम) हम बढते जायगे, कभी निर्बल, निर्वीर्य, निस्तेज क्षीण नहीं बनेंगे, (पूषेम) हम हृष्ट पुष्ट, प्रसन्नचित्त, समर्थ, प्रभावी, वीर और बलवान हो जायंगे, (पश्येम) हम चारों ओर निरीक्षण करेंगे, कि कौन हमारे मित्र हैं और कौन हमारे शत्रु हैं, हमें भय कहांसे है और किस दिशामें हमें भय नहीं है। इसका हम निरीक्षण, परीक्षण और समीक्षण करेंगे, हम अन्धे जैसे नहीं रहेंगे, चारों दिशाओंमें हम निरीक्षण करेंगे और जानेंगे कि भय कहां है और हमारे सहायक कहां हैं। (शृणुयाम)

हम सुनेंगे, अर्थात् ज्ञानवृद्ध उपदेश करनेवालोंसे हम उपदेश सुनेंगे और उस उपदेशको हम अपनायेंगे, आत्मसात् करेंगे, अपने जीवनमें ढालेंगे, इस तरह ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् हम उस ज्ञानको अपने अन्दर बंद ही नहीं रखेंगे, परंतु हम ( प्रब्रवाम ) उपदेश करेंगे और दूसरोंको भी ज्ञान विज्ञान सपन्न करते रहेंगे, जो ज्ञान हमें प्राप्त हुआ होगा, वह हम दूसरोंको देंगे। इस तरह ज्ञान प्रसार करनेमें हम अपना जीवन लगा देंगे। यह सब हमें करना है, इसलिये हमें ( अदीनाः स्याम ) दीन, निर्बल, दुर्बल परावलंबी होना उचित नहीं है। निर्बलता रहनेसे हमारेसे कुछ भी कार्य नहीं हो सकेगा। इसलिये हम अदीन होकर उत्साहसे कार्य करते जायगे। हम समर्थ और प्रभावी बन जायगे। ( भूय. शरदः शतात् ) सौ वर्षसे भी अधिक दीर्घआयु हम अपने प्रयत्नसे प्राप्त करेंगे और उस अति-दीर्घआयुमें भी हम येही कार्य करते रहेंगे। हम अपनी आयु आलस्यमें कभी नहीं दौडायेंगे। जीवन गणके ये कार्य हैं। सबको यह जीवन गण जानना चाहिये और इसका मनन अच्छी तरह करना चाहिये। ( जीवेम ) जीयेंगे इसके साथ ये कर्तव्य करने चाहिये।

इसमे पूर्व बताया है कि ( आप्यायन ) अपना अभ्युदय प्राप्त करना, ( अनमीवत्व ) नीरोगिताका संरक्षण करना और ( स्तेनशासननाश ) चोरके राज्यशासनको नष्ट करना अर्थात् श्रेष्ठ सज्जनोंका राज्यशासन स्थापित करना, ये कार्य करने योग्य हैं। इनके साथ ये जीवनगणके कर्तव्य मिलाइये। यहां दीर्घआयु प्राप्त करना, उस आयुमें ज्ञान प्राप्त करना, ज्ञानका प्रचार करना, जीवन प्रभावी करना, दीन न बनना और सौ वर्षोंसे भी अधिक दीर्घ जीवन प्राप्त करना, ये तथा इस प्रकारके कर्तव्य करनेके लिये वेदने प्रस्तुत किये हैं। यह एक जीवनका उत्तम फलदायी कार्य-क्रम है, जिसके करनेसे मनुष्यको इसी जीवनमें सुख तथा आनन्द प्राप्त हो सकता है।

## सौ वर्ष कर्म करो

'कर्म करते हुए सौ वर्षका दीर्घ आयुष्य प्राप्त करना चाहिये' इसका मनन हमने यहांतक किया और इससे यह बोध प्राप्त हुआ। इस मन्त्रके साथ इसका उत्तरार्ध अब देखिये-

> कुर्वन्नेवेह कर्माणि।
> जिजीविषेच्छतं समाः॥
> एवं त्वयि, नान्यथेतोऽस्ति।
> न कर्म लिप्यते नरे॥ वा० य० ४०।२

'यहां श्रेष्ठतम कर्मोंको करते रहो, सौ वर्षोंका दीर्घ जीवन जीवूंगा ऐसी इच्छा धारण करो, यह सन्मार्ग तेरे मनमें स्थिर रहे, इससे भिन्न दूसरा मार्ग नहीं है, नरके लिये कर्मोंका लेप नहीं लगता।' यह संपूर्ण मंत्र है। जीवनभर प्रशंसा योग्य अत्यंत श्रेष्ठ कर्मोंको करो, सौ वर्षोंका पूर्ण दीर्घजीवन जीनेकी इच्छा करो, क्षणभंगुरवादको छोड दो, दो दिनकी दुनिया ऐसे निराशामय विचार मनमें धारण न करो, प्रत्युत मैं सौ वर्ष तो जीवूंगा ही, परंतु सौ वर्षोंसे भी अधिक दीर्घजीवन धारण करूंगा और उसमें अत्यंत श्रेष्ठ कर्म करता रहूंगा ऐसा उत्साही विचार मनमें सदा रखो। ये ही उत्साही विचार तुम्हारे मनमें रखो, तथा इससे भिन्न मनुष्योंके लिये आचारने योग्य कोई दूसरा मार्ग है ही नही, यह ध्यानमें रखो और शुभकर्म, श्रेष्ठतम कर्म करनेसे मनुष्यको कर्मोंका लेप नहीं लग सकता, यह भी ध्यानमें रखो। सभी कर्म कर्ताको दोषोंमें लिप्त करते हैं ऐसा कुविचार मनमें न रखो। परंतु श्रेष्ठ सत्कर्म कर्ताको कभी दोष नहीं लगाते, ऐसा पक्का निश्चय मनमें रखो और श्रेष्ठ सत्कर्म सदा करते रहो। यही अपना तथा सबकी अभिवृद्धि करनेका एकमात्र उत्तम मार्ग है।

## मनका निश्चय करो

श्रेष्ठतम कर्मोंको करते हुए सौ वर्ष जीवित रहनेकी इच्छा करना, यही एक उन्नतिका मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं, ऐसा मनुष्यका निश्चय होना चाहिये। इसके विरुद्ध उन्नतिके अनेक मार्ग हैं, सब मार्ग उस प्राप्तव्य स्थानको पहुंचते हैं, किसी मार्गसे जाओ, जानेवाला अन्तमें वहीं पहुंचेगा। ऐसा कुविचार कई लोग मनमें धरते हैं। इससे किसी एक मार्गपर अटल श्रद्धा नहीं बैठती, इस कारण ऐसा मनुष्य यह थोडा, वह थोडा ऐसा करता रहता है। किसी मार्गका उत्तम आचरण उससे नहीं होता। इस कारण उसके सभी कार्य अधूरे रहते हैं और एक भी सिद्धि उसको प्राप्त नहीं होती। इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि ( एवं त्वयि ) इस नियमको तुम अपने हृदयमें धारण

करो, 'श्रेष्ठतम कर्मोंको करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा धारण करना' यह सुवर्ण नियम है। इसपर पूर्ण श्रद्धा रखो, इसको हृदयमें स्थायी स्थान दो। अपने द्वारा श्रेष्ठतम कर्म हो रहा है वा नहीं यही केवल तुमको देखना है। और ऐसे उत्तम कर्म करते हुए दीर्घजीवन प्राप्त करनेका यत्न करना। यह एक ही नियम है कि जो मानवोंका तारक है। (इतः अन्यथा नास्ति) इस नियमके सिवाय दूसरा कोई साधन मानवी उद्धारके लिये नहीं है। ऐसा पूर्ण विश्वास मनुष्यमें स्थिर होना चाहिये।

## नरको दोष नहीं लगता

इसी तरह (नरे कर्म न लिप्यते) नरको ऐसे श्रेष्ठतम कर्मका लेप नहीं लगता। यह भी नियम सदा ध्यानमें धारण करने योग्य है। इस मंत्र भागके शब्द विशेष मनन करने योग्य हैं। यहां 'नर' को कर्मका लेप नहीं होता ऐसा कहा है, 'जन, लोक, मनुष्य, मानव' के लिये कर्मका लेप नहीं होता, ऐसा नहीं कहा है। इस कथनमें यह विशेषता है। 'नर' वह है कि जो 'न रमते' जो भोगों और विलासोंमें रमता नहीं। प्रत्येक पुरुष नर नहीं कहलाता। जो भोगवृत्तिसे दूर है, जो भोगोंमें फसा नहीं है वही 'नर' है। ऐसा 'नर' कर्मसे, कर्म करनेपर भी, अलिप्त रहता है।

## जन, लोक, मनुष्य और नर

संस्कृतमें मनुष्यवाचक अनेक शब्द हैं। उनमेंसे कुछ शब्दोंका यहां विचार करते हैं। (१) 'जन' वे हैं कि जो प्रजनन करते हैं, अपने जैसे द्विपाद प्राणी निर्माण करते हैं। प्रजनन-प्रजाकी उत्पत्ति-करनेकी अपेक्षा दूसरा कुछ भी कार्य ये नहीं कर सकते। पशुपक्षी भी अपने जैसी संतान निर्माण करते हैं। वैसी ही संतति मनुष्यने उत्पन्न की, तो उसकी विशेषता तो क्या रही? इसलिये 'जन' शब्द से नीचली श्रेणीके मानवोंका बोध होता है।

इससे थोडा ऊपर उसका दर्जा है कि जो (२) 'लोक' कहलाता है। 'लोक-दर्शने,' जो देखता है, क्या चल रहा है इसका जो निरीक्षण करता है, जो सचमुच देख सकता है, वही लोक है। केवल प्रजनन करनेवालेकी अपेक्षासे जो चारों ओर क्या चल रहा है, इसका निरीक्षण कर सकता है, वह सचमुच 'जन' से अधिक उच्च श्रेणीका मानव हो सकता है।

इसके ऊपर जब हम चढेंगे, और हम देखेंगे, तो हमारे सामने (३) 'मनुष्य' पद आयेगा। 'मननात् मनुष्यः' जो मनन करता है, वह मनुष्य है। अपने जैसे प्राणीको उत्पन्न करनेसे तथा केवल देखनेसे, केवल निरीक्षणकी शक्तिसे, मनन करनेकी शक्ति अधिक श्रेष्ठ है। इसलिये मनुष्य पद श्रेष्ठत्वका द्योतक है। 'मनुष्यत्व' इस मनन करनेकी शक्तिमें है। जितनी मनुष्यकी मनन शक्ति विशेष होती है, उतनी उसकी योग्यता श्रेष्ठ समझी जाती है। मनन शक्तिके कारण ही मनुष्यको 'मनुष्य' कहते हैं।

मनुष्योंमें 'नर' होते हैं, जो भोगोंमें लिप्त नहीं होते, जो कर्तव्य तत्पर रहते हैं। ये ही श्रेष्ठतम कर्म कर सकते हैं। सर्वजन हितकारी कर्म येही कर सकते हैं। और इनको ही 'न कर्म लिप्यते नरे' (नरको कर्मोंका लेप नहीं लगता) ऐसा कहा है। 'नर करणी करे तो नरका नारायण हो जाय' यह जो कहावत है, वह 'नर' के लिये ही है। नर श्रेष्ठ मनुष्योंका वाचक पद है। वे श्रेष्ठतम कर्म करते हैं और भोगोंमें न फंसनेके कारण कर्मफलसे सदा अलिप्त रहते हैं। वेद कहता है कि ऐसे नरको कर्मका लेप नहीं लगता। परंतु अन्य सर्व साधारण जनोंको उनके किये कर्मोंका लेप नहीं लगता, ऐसा तो वेदका कथन नहीं है। प्रथम मनुष्य 'नर' बने और अत्यंत श्रेष्ठ कर्म सर्वजनहित साधन करनेके लिये करे और कहे कि मैं इस कर्मके लेपसे अलिप्त हूं। निःसंदेह वह निर्लेप रहेगा।

## यहां कर्म करो

मन्त्रमें 'कुर्वन् एव इह कर्माणि' ऐसा कहा है। इस मन्त्र भागमें 'इह' पद है। यहां इस भूलोकके ऊपर रहकर कर्मोंको करना चाहिये। इस भूलोकको 'कर्म लोक' कहते हैं। कर्म करनेका यही भूलोक है। मानवी शरीर भी कर्मका साधन है, मानवको वेदने 'क्रतु' कहा है। यह सौ वर्ष जीवित रहकर प्रति वर्ष एक एक क्रतु करता है। इसलिये इस साधकका नाम 'शतक्रतु' है। ये सब पद कर्म करनेवालेके वाचक हैं। यहां इस लोकके मनुष्य कर्म करें और अपना सुधार करें। इस लोकमें सब प्रकारके

स्वर्गीय सुख प्राप्त करना मनुष्यकी कर्म शक्तिपर निर्भर है। कर्मोंको यहां ही इस लोकमें करना चाहिये। 'कुर्वन् एव' यहां कर्म ही करने चाहिये, सतत कर्मण्यता मनुष्यमें रहनी चाहिये। कर्मोंको किये बिना यहां शुभ गति मनुष्यको मिलनी नहीं है।

## कर्मत्याग असंभव है।

जो तो कहते हैं कि, कर्मका त्याग करना चाहिये वह तो वेदमें किसी जगह नहीं कहा है। कर्मत्याग मनुष्यके लिये असंभव है। इस लोकमें तथा मनुष्य शरीर रहनेतक कर्मत्याग असंभव है। मनुष्य शरीरका स्वभावही कर्म करना है। फिर इस शरीरके रहते हुए कर्मत्याग किस तरह हो सकता है? इसलिये मन्त्रमें कहा है कि 'इह कर्माणि कुर्वन् एव' यहां कर्मोंको करते हुए ही जीनेकी इच्छा करनी चाहिये। कर्मोंका त्याग करके जीनेकी इच्छा धारण नहीं करनी है, क्योंकि संपूर्ण कर्मत्यागकाही अर्थ मृत्यु है। संपूर्ण कर्मत्याग मनुष्यके लिये असंभव है। इसलिये 'इस जगत्' में जीवित रहना है, तो उत्तमोत्तम कर्मोंको करते हुए ही जीवित रहनेकी इच्छा करनी चाहिये।

## मनुष्यकी आयु, निश्चित या अनिश्चित?

यहां एक शंका आ सकती है वह यह कि मनुष्यकी आयु परमेश्वरने निश्चित की हुई होती है, वा निश्चित नहीं होती? यदि नियत आयु है, तो 'शतं समाः जिजीविषेत्' सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करनी चाहिये, अथवा 'भूयः च शरदः शतात्' 'भूयसीः शरदः शतात्' सौ वर्षोंसे भी अधिक आयु प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये, इसका अर्थ क्या है? यदि आयु नियत है, तब तो इन वेदाज्ञाओंका कुछ भी अर्थ नहीं है। परंतु यदि इन वेदाज्ञाओंमें कुछ न कुछ अर्थ है, तब तो मनुष्य अपनी आयु निःसंदेह बढा सकता है और मनुष्यको ऐसे कर्म करने चाहिये कि, जिनसे मनुष्यकी आयु बढती जाय। अतः इस शंकाका निराकरण करना चाहिये कि मनुष्यकी आयु नियत है वा अनियत?

आज कल लोग मानते हैं कि मनुष्यकी आयु जन्मके समयमेंही निश्चित हुई होती है, उसमें भी नाना प्रकारके रोग हैं, अपमृत्यु है, अपघात हैं। ये मनुष्यकी आयुका नाश करते हैं। इस मृत्युलोकका जीवन क्षणभंगुर अशाश्वत और दुःखपूर्ण है। यह निराशावादी तत्त्वज्ञान बुद्ध संप्रदायके प्रारंभसे इस भूमिमें प्रचलित हुआ है। इस भूमिपरके मानवी जीवनका इस बुद्धके संप्रदायने सत्यानाश किया है। यहां रोग हैं, अपमृत्यु हैं यह सच है। परंतु मनुष्य इनपर उपाय करके अपनेको नीरोग रख सकता है और अपनी आयु बढा सकता है। यह वेदका सिद्धान्त है, इसीलिये 'भूयश्च शरदः शतात्' सौ वर्षोंसे भी अधिक जीनेकी इच्छा धारण करो, ऐसा वेदने कहा है। सौ वर्ष या अधिक जीनेकी इच्छा धारण करना, तथा वैसा दीर्घजीवन होने योग्य अपना आचार व्यवहार करना' यहां इष्ट है। ऐसा करनेसे मनुष्यकी आयु बढती है। प्राचीन समयमें भगवान् श्रीकृष्ण, महाबली बलरामजीकी आयु १२५ वर्षोंकी थी, भीष्मपितामहकी आयु १७० वर्षोंकी थी, धर्म भीम अर्जुन आदि राज्य करके वनमें गये उस समय इनकी आयु १०० वर्षोंकी हो चुकी थी, दो हजार वर्ष पूर्व ग्रीक लोग भारतमें आये थे, उस समय १४० वर्षोंके मनुष्य मार्ग परसे अच्छी तरह भ्रमण कर रहे हैं ऐसा दृश्य उन्होंने भारतमें देखा था। अब इस समयमें भी १०० वर्षोंसे अधिक आयुवाले पुरुष दीखते हैं, इससे सिद्ध होता है कि 'शतं समाः जिजीविषेत्' सौ वर्ष जीनेकी इच्छा मनुष्य करे, यह बात तो मनुष्यके स्वाधीन की है। मनुष्य इच्छा करे तो उसकी आयु बढ सकती है, और चाहे तो उसका अन्त अकालमें भी हो सकता है। इसलिये इस मंत्रमें 'जिजीविषेत्' जीनेकी इच्छा करनी चाहिये ऐसा कहा है। जिजीविषामें प्रयत्न पूर्वक इच्छा रहती है। इसका यह अर्थ है कि मनुष्य प्रयत्नपूर्वक इच्छा करेगा, तो उसकी आयु बढेगी और उदास वृत्तीसे रहेगा, तो उसकी आयु घटती जायगी।

इतिहास दृष्टिसे भी यह सत्य दीखता है। अपने प्राचीन वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, रामायण, महाभारत तथा आयुर्वेदके ग्रन्थ प्रयत्नसे दीर्घायु प्राप्त करनेका उपदेश कह रहे हैं, इसलिये उस समयमें लोगोंकी आयु अतिदीर्घ थी। आयुर्वेदमें जीवनीय कल्प दिये हैं, वे आयु बढानेके लिये ही हैं। योग साधनसे भी आयु बढती है, योगायु ३०० वर्षोंकी मानी है। ज्योतिषशास्त्र तो सर्वसाधारण आयु १२० वर्षोंकी मानता है।

यह तो वैदिक वायुमंडलकी बात हुई। पर जिस समयसे बुद्ध संप्रदाय चला और उसका क्षणभंगुरवाद, दुःखमय वाद शुरू हुआ उस समयसे हमारी आयु घटने लगी। वह घटते घटते इस समय भारतकी औसद आयु २५ वर्षकी हुई है, जो वैदिक समयमें औसद आयु सौ वर्षकी थी। इतना अन्तर इस भ्रान्त विचार धारासे हुआ है।

## मृत्युका पांव दूर हटाओ

मृत्योः पदं योपयन्तः यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन
शुद्धाः पूता भवत यज्ञियास। ऋग्वेद

'(मृत्योः पदं योपयन्तः) तुम्हारे सिरपर बैठा हुआ मृत्युका पांव दूर करो, (एत) आगे बढो, (द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः) तुम्हारी दीर्घ आयुको अधिक अतिदीर्घ बनाकर धारण करो, (प्रजया धनेन आप्यायमानाः) प्रजा और धनसे बडे वैभवको प्राप्त करते रहो और शुद्ध पवित्र और पूजनीय बनो।'

यह वेदकी आज्ञा कितनी स्पष्ट है? यह आज्ञा कितनी निश्चित है, देखिये। इसी जगत्में यह सब करना है। इसी आयुमें अपनी आंखसे यह देखना है।

## अपनी आयु दीर्घ बनाओ

शुद्ध पवित्र और पूजनीय बनना, सन्तानों और धनोंसे युक्त होकर पर्याप्त वैभव प्राप्त करना, अपनी आयु अतिदीर्घ करके उसको धारण करना और मृत्युको दूर करना ये प्रशस्ततम कर्म मनुष्यको करने योग्य हैं। ये सर्व यहांके वैभवके लिये करनेके कर्म हैं। वेद कहता है कि, यहां स्वर्गसुख प्राप्त करने योग्य परिस्थिति अपने प्रयत्नसे निर्माण करनी चाहिये। इसीका नाम कर्म है और यही कर्म मनुष्यको दोष नहीं लगाता।

इस विवेचनका आशय यह है कि अपनी आयु दीर्घ करना अथवा छोटी करना मनुष्यके कर्मोंके आधीन है। इसलिये मनुष्य दक्षतासे प्रयत्न करे और दीर्घायु तथा उत्तम कर्म-शक्ति अपने अन्दर प्राप्त करे और अपना विकास करे।

१ यहां दीर्घजीवन प्राप्त करना,
२ अपनी आयुभरमें सर्वजन हितकारी श्रेष्ठतम कर्म करते रहना,
३ यही एक मार्ग मनुष्यके लिये है, दूसरा नहीं ऐसा पक्का विश्वास रखना, और
४ ऐसे कर्मोंका दोष मनुष्यको नहीं लगता यह भी विश्वास रखना।

यह उपदेश यहां मिला। यह आत्मोद्धारका मार्ग है। अब आत्मघातकी लोगोंका बर्ताव कैसा होता है देखिये—

## आत्मघातकी लोग

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृत्ता।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥
वा० य० ३

'असुर वृत्तीवाले गुप्तलोक अज्ञानान्धकारसे व्याप्त रहते हैं– जो आत्मघातकी लोग होते हैं वे मरणोत्तर भी (तथा जीतेजी भी) इनमें समाविष्ट होते हैं।' आत्मघातकी लोग कौनसे हैं? कि जिनका वर्णन इस मन्त्रमें किया गया है? पूर्व मन्त्रमें जिन सज्जनोंका वर्णन हुआ है, उसके विरुद्ध वर्तनेवाले जो दुर्जन होते हैं, वे आत्मघातकी होते हैं। इसकी तालिका देखो—

| आत्मोन्नतिकरनेवाले | आत्मघातकी |
|---|---|
| १ यहां श्रेष्ठ कर्म सर्वजनहितार्थ करनेवाले सत्पुरुष हैं। | १ कर्म न करना, दुष्ट कर्म करना, सर्वजनहितका घात करनेवाले कर्म करना, आलस्यमें रहना इ० ये आत्मघातकी हैं। |
| २ इस जगत्में श्रेष्ठ कर्म करना चाहिये ऐसा माननेवाले, | २ इस जीवनमें कर्म न करनेवाले, दुष्ट कर्म करनेवाले, |
| ३ सौ वर्ष अथवा अधिक जीनेका प्रयत्न करनेवाले अर्थात् श्रेष्ठ कर्म करते हुए दीर्घजीवन प्राप्त करनेका यत्न करनेवाले। | ३ जीवनको अशाश्वत, क्षणभंगुर, दुःखमय मानकर शरीरकी घृणा करनेवाले, |
| ४ यही एकमात्र उद्धारका मार्ग है ऐसा माननेवाले, | ४ मनुष्यके उद्धारके अनेक मार्ग हैं ऐसा माननेवाले, किसीपर भी दृढ विश्वास न रखनेवाले, |
| ५ श्रेष्ठ सत्कर्म करनेसे कर्ताको दोष नहीं लगता ऐसा माननेवाले, ये आत्मोद्धारक हैं। | ५ सब कर्म कर्ताको दोष लगाते हैं ऐसा मानकर कर्मकी निंदा करनेवाले, ये आत्मघातकी हैं। |

इस तालिकासे स्पष्ट हो सकता है कि कौन आत्मघातकी हैं और कौन आत्मोन्नति करनेवाले हैं। जो आत्मघात करते हैं, उनके भी लक्षण संक्षेपसे यहां बताये गये हैं। वस्तुतः आत्मघातियोंके कुलक्षण अनेक हैं, उनकी गणना करना कठिन है। तथापि यहां संक्षेपसे उनका स्वरूप बताया है। आत्मोद्धारकोंके तो लक्षण थोडे ही हैं। आत्मघातकी लोगोंकी गणना ओतें जो अथवा मरणोत्तर भी इन गुण्डोंमें होती है, जो राक्षसी वृत्तीवाले होते हैं। यह तो आत्मघातके दुष्कृत्य करनेका परिणाम है !

## दुराचारी गुण्डोंका निवासस्थान पृथक् हो

राष्ट्रमें भी जो दुराचारी गुण्ड होते हैं, उनकी गणना पृथक् करनी चाहिये। वे सज्जनोंके स्थानमें न जा सकें और उनके श्रेष्ठ कर्ममें विघ्न न कर सकें, ऐसा प्रबंध शासन संस्थाके द्वारा होना चाहिये। आत्मघातकी असुर राक्षसोंका स्थान पृथक् हो और आत्मोद्धारक विबुधों वा दैवी संपत्तिवालोंका स्थान पृथक् होना चाहिये। शासकोंका निरीक्षण उन असुरोंपर सदा दक्षताके साथ रहना चाहिये, जिससे वे सज्जनोंको उपद्रव न दे सकें।

ग्राममें सज्जनोंका निवासस्थान एक स्थानपर रहे और राक्षसी गुण्ड लोगोंका स्थान पृथक् हो। राक्षसी वृत्तीवालोंपर रक्षकोंका निरीक्षण रहे। जिससे वे उपद्रव न मचा सके। ऐसा उत्तम प्रबंध राष्ट्रमें हो।

दैवी संपत्तिवालोंका वर्णन भी इसी मन्त्रको देखनेसे किया जा सकता है। देखिये— " दैवी संपत्तिवाले विबुध उत्तम ज्ञान विज्ञानसे युक्त होते हैं। जो आत्मोन्नति करनेके लिये श्रेष्ठ कर्म करते रहते हैं, उनकी गणना उन दैवी संपत्तिवालोंमें होती है। " दैवी संपत्तिवाले और आसुरी संपत्तिवालोंका वर्णन विस्तारसे श्रीमद्भगवद्गीतामें किया है वह अब देखिये—

## दैवी संपत्तिका वर्णन

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥३॥ गी० १६

" ( १ ) निर्भयता, ( २ ) अन्तःकरणकी पवित्रता, ( ३ ) ज्ञान और योगमें विशेष उन्नतिकी अवस्था, ( ४ ) दान सत्पात्रमें देनेकी रुची, ( ५ ) संयम और इंद्रिय दमन करना, ( ६ ) यज्ञ अर्थात् सज्जनोंका सत्कार, मानवोंकी संघटना और निर्बलोंकी सहायता करनेके कर्म करना, ( ७ ) विद्याध्ययन करनेमें चित्त लगाना, ( ८ ) शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेकी शक्ति प्राप्त करना, ( ९ ) व्यवहारकी सरलता, ( १० ) हिंसा न करना, ( ११ ) सत्यका पालन करना, ( १२ ) क्रोध न करना, ( १३ ) त्याग अर्थात् अपने सुखका सबके हित करनेके लिये अर्पण करना, ( १४ ) शांति धारण करना, ( १५ ) चुगली न करना, एकको गुप्त बात दूसरेसे कहकर दोनोंमें झगडा खडा करनेका यत्न न करना, ( १६ ) प्राणियोंपर दया करना, ( १७ ) लोभ न धारण करना, ( १८ ) अन्तःकरणकी मृदुता, ( १९ ) बुरा कर्म करनेकी लज्जा होनी, ( २० ) चंचलताका न होना, ( २१ ) तेजस्विता, ( २२ ) क्षमाशील होना, ( २३ ) धैर्य, ( २४ ) पवित्रता, ( २५ ) द्रोह किसीके साथ न करना, ( २६ ) अत्यंत मानी न बनना, अत्यंत घमंड न करना, ये दैवीसपत्तिवालोंमें रहनेवाले गुण हैं। जो नर सत्कर्म करते हुए सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं और अपना जीवन नर श्रेणीका बनाते हैं, उनके ये लक्षण हैं। अब असुर स्वभाववालोंके लक्षण देखिये—

## आसुरी प्रवृत्तीका वर्णन

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४॥
दैवीसंपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ॥ ५॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धय।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १०॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थ संचयान् ॥ १२ ॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

गी० १६

१ दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान ये दुर्गुण आसुरी प्रवृत्तीसे उत्पन्न हुए मनुष्यमें जन्मतः होते हैं। (४)

२ दैवीसंपत्तिसे बंधनसे मुक्ति हो जाती है और आसुरी प्रवृत्तीसे बंधनका दुःख प्राप्त हो जाता है। (५)

३ आसुरी लोग प्रवृत्ति क्या है और निवृत्ति किसे कहते हैं यह जान नहीं सकते। किस शुभकर्ममें मनुष्यकी प्रवृत्ति होनी चाहिये और किस तरहसे अशुभ कर्मसे हमें निवृत्त होना चाहिये यह विवेक आसुरी लोगोंमें नहीं होता है। (७)

४ पवित्रता, सदाचार, सत्य आसुरी प्रवृत्तिके लोगोंमें नहीं होता है। (७)

५ यह जगत् असत्य है, निराधार है, और इसका कोई नियामक नहीं है। यह जगत् अनित्य, क्षणभंगुर, आधार-रहित और शासक रहित है ऐसा असुरोंका मत है। (८)

६ यहां परस्पर किसीका किसीसे कोई संबंध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र और पृथक् है। इस जगत्का उद्देश विषय भोग भोगनेके सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है। (८)

७ इस तरहकी दृष्टिका स्वीकार करनेवाले, नष्ट दुष्ट स्वभाववाले अल्पबुद्धी लोग बडे बडे उग्र कर्म करते हैं और जगत्के नाशके लिये तथा सबका अहित करनेके लिये ही प्रवृत्त होते हैं। (९)

८ कभी तृप्त न होनेवाली वासनाओंको धारण करनेवाले, मोहसे अनेक दुष्ट इच्छा धारण करनेवाले दम्भी, मानी और मदान्ध असुरलोग, अपवित्र कर्मोंको करते हुए सदा असत्कर्ममें ही प्रवृत्त होते हैं। (१०)

९ कल्पान्ततक टिकनेवाली अपरिमित चिन्ताको धारण करनेवाले ये असुर लोग कामभोगको ही सर्वस्व मानते हैं और यही सब कुछ है, इससे भिन्न कुछ भी नहीं है, ऐसा उनका आग्रह रहता है। (११)

१० सैकडों आशापाशोंसे बंधे हुए कामी और क्रोधी ये असुर लोग अपने उपभोगके लिये अन्यायसे बहुतसा धन संचय ये करते हैं। (१२)

११ आज मैंने यह धन प्राप्त किया है, यह मनोरथ मैं कल प्राप्त करूंगा, आज मेरे पास इतना धन है, कल इतना धन मेरे पास होगा। (१३)

१२ इस शत्रुका नाश मैंने आज किया है, अन्य शत्रुओंका नाश मैं कल करूंगा। (१४)

१३ मैं इस धनका स्वामी हूं, मैं भोगी हूं, मैं सिद्ध हूं और मैं बलवान् हूं, तथा मैं सुखी हूं। (१४)

१४ मैं धनपति हूं, मैं कुलीन तथा उत्तम परिवार संपन्न हूं, मेरे जैसा इस जगत्में कौन दूसरा है? (१५)

१५ मैं यज्ञ करूंगा, मैं दान दूंगा, मैं आनंद भोगूंगा, इस तरह वे असुर अज्ञानमें मोहित होकर घमंड मारते रहते हैं। (१६)

१६ अनेक प्रकारसे भ्रान्तचित्त बने हुए, अनेक मोह-पाशोंसे बंधे हुए, कामभोगोंके पीछे पडे हुए अपवित्र नरकमें ये असुर गिरते हैं। (१६)

१७ अपने आपको बडे संभावित तथा प्रतिष्ठायुक्त माननेवाले, धन मान और घमण्डसे युक्त ये असुर लोग दम्भसे विधिहीन यज्ञोंको करते हैं। (१७)

१८ अहंकार, बल, घमंड, काम और क्रोधका आश्रय करके अपने और दूसरोंके देहोंमें रहनेवाले आत्माका द्वेष करते हैं। और सदा दूसरोंकी निंदा करते रहते हैं। (१८)

यह आसुरी प्रवृत्तीवालोंका वर्णन है। इससे पता लग सकता है कि, जगत्में ये असुर लोग कौनसे हैं और सुर-लोग कौन हैं। यहां यह वर्णन विस्तारसे किया है, इस लिये इस वर्णनको देखकर मनुष्य असुर लोगोंको पहचाने और विबुधोंको भी पहचाने विना इसकी परीक्षा किये इस जगत्का व्यवहार करना ही असंभवसा हो जायगा। मनुष्य रूपसे ये असुर राक्षस और दानव इस जगत्में घूम रहे हैं। ऊपरसे उनका पोशाख अच्छा रहता है, परंतु अन्दरसे उनके कर्तुत असुरोंके होते रहते हैं। वे भयानक होते हैं, इसलिये इनसे बचना चाहिये। वेद मन्त्रमें भी जो 'असूर्य-लोक' कहे हैं वे राक्षसी वृत्तीवाले गुण्ड ही हैं। जो शारीरिक बलसे बडे मोटे ताजे होते हैं, हृष्ट पुष्ट होते हैं, किसी जातका कुकर्म करना उनके लिये सहज होता है। वे क्रूर और दुष्ट होते हैं।

## गुण्डोंसे अपना बचाव करो

असुरोंसे अपने आपका बचाव करना और विबुधोंकी संघटना करके उनका बल बढाना यही यहां करने योग्य कार्य है।

## दीर्घ आयुकी आवश्यकता

इस मन्त्रमें सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करनेको कहा है। मानवी जीवनमें दीर्घायु अत्यंत आवश्यक है। विना आयुके बाकी सब पदार्थ निकम्मे हो जाते हैं। देखिये मनुष्य धन धान्य संपन्न है, घरमें पुत्र पौत्र स्त्री सेवक रथ घोडे गौवें आदि सब ऐश्वर्य है, स्वयं ज्ञानी है, विज्ञानसंपन्न है, अधिकार भी बडा है और मरने लगा है अर्थात् दीर्घजीवन नहीं है, तो वैसी अवस्थामें उसके उस ऐश्वर्यका उसके लिये क्या उपयोग हो सकता है? सब ऐश्वर्योंका उपयोग दीर्घ तथा रोगरहित आयु रही तो ही हो सकता है। आयु तो १२५ वर्षोंकी है, पर सदा चारपाईपर बीमार रहता है, दवा खाते खाते तंग आया है। वैसे दीर्घ बीमार चाहते हैं कि एकवार मृत्यु आ जाय तो अच्छा है!! दीर्घकालीन बीमार मृत्युको निमंत्रण देते हैं। इसलिये नीरोग तथा बल-युक्त दीर्घआयु चाहिये। इसलिये वेदने कहा है कि "अदीनाः स्याम शरदः शतं' हम सौ वर्षोंतक दीन न होते हुए आनन्द प्रसन्न हृष्ट पुष्ट तथा बलवीर्य संपन्न रहें। यह शुभ इच्छा है। सौ वर्षकी पूर्ण आयु तो चाहिये परंतु साथ साथ नीरोग बलवीर्य संपन्नता भी आवश्यक है।

## आयुके आश्रयसे कर्म

आयुके आश्रयसे ही सब भोग भोगे जाते और सब कर्म किये जाते हैं। यद्यपि मंत्रके प्रारंभमें--

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'

'कर्मोंको करते हुए' ऐसा कहा है और पश्चात्—

'जिजीविषेत् शतं समाः'

अर्थात् 'सौ वर्ष जीनेकी इच्छा धारण करो' ऐसा कहा है, तथापि सौ वर्ष जीनेकी इच्छा प्रथम मनमें धारण करनी चाहिये और पश्चात् प्रशस्ततम कर्म करते रहना चाहिये। क्योंकि विना आयुके श्रेष्ठ कर्म किये ही नहीं जायगे। सौवे वर्षमें भी कर्म करनेकी शक्ति अक्षुण्ण रहनी चाहिये। यहांके सौ वर्ष आयुके १२० वर्ष होते हैं अर्थात् १२० वे वर्ष अपनी कर्मशक्ति उत्साहमयी रहनी चाहिये। शक्तिकी क्षीणता १२० वे वर्ष भी नहीं होना चाहिये। देखिये वैदिकधर्मने मनुष्यपर कितना कर्तव्यका भार रखा है। प्रथम वह १२० वर्षकी दीर्घआयु प्राप्त करनेका यत्न करे और अन्तिम वर्षमें भी उसकी शक्ति क्षीण न हो। इतना प्रयत्न करनेका भार मनुष्यपर वेदने रखा है। तरुण जैसा उत्साह १२० वे वर्ष रहना चाहिये, यह इसका आशय है। इतना निश्चयपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये और इसमें प्रमाद होने नहीं देना चाहिये।

केवल दीर्घायुष्य मनुष्यकी शोभा नहीं बढा सकता, वह तो एक उपहासका विषय बनेगा। यदि कोई मनुष्य दीर्घायु है, परंतु ज्ञानहीन, कर्म करनेमें असमर्थ, निर्धन है, तो उसकी दीर्घ आयु उपहास करनेके लिये योग्य समझी जायगी। इसलिये केवल दीर्घ आयु कामकी नहीं है। इसीलिये मंत्रमें प्रथम कर्म करते हुए, दीर्घायु की इच्छा करो, ऐसा कहा है। इससे मंत्रके विधान-का पूर्वापर संबंध कितना महत्त्वपूर्ण है, इसका पता लग जायगा। प्रथम मनुष्यको प्रशस्त कर्म कुशलतापूर्वक करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये, इसके लिये ज्ञान विज्ञान संपन्नता जितनी चाहिये, उतनी अवश्य प्राप्त करनी

चाहिये। और ऐसे कर्ममें कुशल पुरुष अपनी दीर्घ आयु हो ऐसी इच्छा करें और उसके लिये आवश्यक तो प्रयत्न भी करें और दीर्घआयु अपने प्रयत्नसे प्राप्त करें।

## कुविचार दूर करो

क्षणभंगुर संसार, नश्वर जगत्, अशाश्वत विश्व दो दिनकी दुनिया आदि अवैदिक विचार स्थायी रूपसे दूर फेंकने चाहिये। ऐसे कुविचारोंको अपने पास आने नहीं देना चाहिये। ये दुष्ट विचार, ये कुविचार यदि अपने मनमें रहे, तो वे वहां स्थायी नश्वरताका कुसंस्कार निर्माण करेंगे। जिसके कारण शरीरमें वैसा ही नश्वरताका दुष्परिणाम होगा। और दीर्घायु प्राप्त होना असंभव हो जायगा।

देखिये यदि कोई मनुष्य इस जगत्को क्षणभंगुर अशाश्वत और दुःखमय मानता है, तब तो वह इसी जगतमें अपने लिये क्यों कर दीर्घायु प्राप्त करना चाहेगा। यह जगत् दुःखमय होनेसे वह इसको छोडना ही चाहेगा। इसीलिये क्षणभंगुरवादियोंने कहा है कि, जगत्का त्याग किये विना ईश्वरकी प्राप्ति नहीं, जगतके त्याग किये विना सुख नहीं है।

पर वैदिकधर्मी तो विश्वको परमेश्वरका स्वरूप मानता है। इसलिये विश्वको वह छोडना नहीं चाहता। परमेश्वरको कौन मूर्ख छोड देगा? विश्वरूप परमेश्वर है और वह वैदिक धर्मीको संसेव्य है। इसलिये अति दीर्घजीवन प्राप्त करके वह विश्वरूप ईश्वरको प्रसन्न करनेका यत्न करेगा। इसी कार्यके लिये इसको दीर्घ आयुष्य और विशेष कर्मशक्ति चाहिये। कर्मोंको करते हुए यह सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करेगा। इसका कारण यह है।

हम सर्वजन हितकारी श्रेष्ठतम कर्म करेंगे और सौ वर्षोंकी पूर्ण आयु प्राप्त करेंगे।

## कर्मका संन्यास

यहां कई पाठक ऐसी शंका करेंगे कि मनुष्यको कर्म करने चाहिये ऐसा जो यहां वारंवार कहा जाता है, यदि यह सत्य माना जाय तो कर्मसंन्यासके लिये कहां अवकाश होगा? इस शंकाके उत्तरमें निवेदन यह है कि संन्यासमें कर्मका अभाव होता है यह सत्य नहीं है। संन्यासमें भी बडे कर्म किये जाते हैं। श्री मच्छंकराचार्य जो स्वयं कर्म त्यागके प्रतिपादक थे उन्होंने भारतवर्षमें भ्रमण करके चारों दिशाओंमें अपने मठ स्थापन किये, अधर्मका तथा पाखंडका खंडन किया और धर्मकी स्थापना की। इस तरह अनेकानेक संन्यासी हुए हैं कि जिन्होंने जनतामें धर्म संस्थापनार्थ बडे बडे कर्म किये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सर्वजन हितके लिये आवश्यक कर्म करनेका निषेध संन्यासमें नहीं है।

संन्यासमें व्यक्ति और कुटुंबका संबंध छूट जाता है और संपूर्ण मानवताके हितके लिये प्रचंड कार्य करनेका बडा कार्यक्षेत्र खुला होता है। इसलिये यह कोई न समझे कि संन्यासमें कर्म त्याग है। मनुष्य जबतक जीवित रहता है, तबतक उसको कर्म छोडना असंभव है। यह सिद्धान्त रूपसे प्रथम समझना चाहिये। इसीलिये कहा है कि–

यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे। अथर्व ४।२४।६

'जो आत्मा प्रथमतः यहां कर्म करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है।' यहां जन्म लेनेका हेतु कर्म करना ही है। इस लिये वेद द्वारा घोषणा की गई है कि–

कर्म कृण्वन्तु मानुषाः। अथर्व ६।२३।३

'मनुष्य यहां जन्म लेकर कर्म करें।' कर्म करनाही मनुष्यके लिये योग्य है। शरीर भी मनुष्यको ऐसा मिला है कि जो सदा कर्म करता ही रहेगा। प्रत्येक इन्द्रियसे कर्म होता ही रहेगा। इसलिये जहां पांच कर्मेंद्रिय और पांच ज्ञान इंद्रिय कर्म करते ही रहेंगे, तो मनुष्यका कर्म न करना संभव किस तरह हो सकेगा? इसलिये गीतामें कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥
गी० ३।१०

'प्रजापति परमेश्वरने यज्ञ कर्मके साथ प्रजाजनोंको उत्पन्न किया और उनको उपदेश दिया कि, यही यज्ञ कर्म तुम्हारे लिये सुख देनेवाला और तुम्हारी उन्नति करनेवाला है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्म तो मनुष्यके साथ उत्पन्न हुआ है वह इससे पृथक् नहीं हो सकता है। इसलिये यज्ञ कर्मका त्याग संभव नहीं है।

इसलिये वैदिक धर्म यज्ञका धर्म है, कर्म करनेका धर्म है। इस कर्मके विषयमें और कर्मका त्याग करके सुखी होनेके विषयमें बडे भ्रम फैले हैं, उन सब भ्रमोंको पाठक अपने मनसे दूर फेंक दें और परम पुरुषार्थ जीवनभर करनेकी अभिलाषा मनमें धारण करे। यज्ञ कर्म अपने जीवनका धर्म है यह कदापि न भूलें। इसलिये कहा है—

स्वे शरीरे यज्ञं परिवर्तयामि। प्राणाग्नि उ० २
शरीरं यज्ञः। महा ना० उ० २०।१२
वाग्वै यज्ञस्य होता। चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युः।
प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता। मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा।
बृ० उ० ३।१।१-६

'अपने शरीरमें यज्ञको परिवर्तित करना चाहिये। यह शरीर यज्ञमय है। यहां इस शरीरके यज्ञमें वाक्, चक्षु, प्राण और मन ये क्रमसे होता अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा है।' इस तरह यह शरीर यज्ञमय होना चाहिये।

इससे कोई यह न समझे कि प्रत्येक मनुष्यका शरीर यज्ञरूप हो चुका है। नहीं। प्रत्येक मनुष्यको अपना शरीर यज्ञरूप करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यहां ये वाणी, नेत्र, प्राण और मन यदि यज्ञरूप न बने, तो ये ही राक्षस बनेंगे और ये ही अनर्थ मचायेंगे। इसलिये इनके कारण अपना ही नाश न हो इसलिये इनको परिशुद्ध करके इनसे यज्ञ हो, ऐसी परिस्थिति निर्माण करनी चाहिये। स्वभावसे इनकी प्रवृत्ति शुभ हो अशुभ न हो। ऐसा जब होगा, तब इस शरीरसे होनेवाला कर्म यज्ञरूप होगा। यह प्रयत्न मनुष्यको करना चाहिये। इस उद्देश्यसे कहा है-

अध्वरो वै यज्ञः। श. ब्रा० १।२।४।५
यज्ञो वै भुज्युः। यजु० १८।४२
यज्ञो भगः। य० ११।७
यज्ञो वै महिमा। य० ११।६
यज्ञो वै सुम्नम्। य० १२।६७
यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। य. १।१
यज्ञो वै विशः, यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि।
श० ब्रा० ८।७।३

ब्रह्म हि यज्ञः। श० ब्रा० ३।१।४।१५
यज्ञो वै भुवनज्येष्ठः। कौ० ब्रा० २५।११
यज्ञो वा अवति। तां० ब्रा० ६।४।५
भैषज्ययज्ञा वा एते। तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते।
ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते। गो० ब्रा० १।१९

'यज्ञका कर्म हिंसारहित होता है।' किसीकी हिंसा किसीको कष्ट इससे नहीं होते। 'यज्ञ सबको अन्न देता है।' इससे सबका पालन पोषण होता है। इस तरह यज्ञ सबका पालन करनेवाला है। अन्न उत्पन्न करना भी एक यज्ञ है। 'यज्ञ भाग्य बढानेवाला है।' ऐश्वर्य देनेवाला, धन बढानेवाला यज्ञ है। यज्ञसे मनुष्योंकी संगठना होती है और मनुष्योंके भाग्यकी वृद्धि होती है। 'यज्ञ मनुष्योंकी महिमा बढाता है' इस कारण यज्ञकर्ताकी स्तुति सब लोग करते हैं। उसका संमान करते हैं। 'यज्ञ ही सुख है।' यज्ञ करनेसे सबको सुख मिलता है। यज्ञसे मानव संघटित होते हैं, सुरक्षित होते हैं और सुखी होते हैं। इसलिये कहा है कि, 'यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है।' मनुष्यको इसीलिये उत्तमोत्तम कर्म करने चाहिये।

'प्रजाजन ही यज्ञ है क्योंकि यज्ञसे ही सब प्रजा सुखसे रहती है।' यदि प्रजामें यज्ञ भाव न रहा, तो वह प्रजा बिखरी होती है और उस बिखरे भावके कारण प्रजाका नाश ही होता है। इसलिये कहते हैं प्रजाका अस्तित्व ही यज्ञपर अवलंबित है। 'यज्ञ बडी शक्ति है, यज्ञ ज्ञान ही है।' जिसके पास ज्ञान होता है वहां ही शक्ति रहती है। ज्ञान ही शक्ति है। ज्ञान ही यज्ञ है अर्थात् यज्ञसे शक्ति बढ जाती है।

'यज्ञ सब भुवनोंमें श्रेष्ठ कर्म है।' जो सर्वजन हितकारी श्रेष्ठकर्म होगा वह यज्ञ है। 'यज्ञ संरक्षणका कार्य है।' संरक्षणसे सब प्रकारकी प्रगति हो सकती है। इसलिये संरक्षण भी एक बडा यज्ञ है। 'ऋतुके संधिकालमें व्याधियां होती हैं इसलिये उस समय उन रोगोंको दूर करनेके हेतुसे औषधियोंके हवनसे यज्ञ किये जाते हैं।'

पाठक यहां इन वचनोंमें देखेंगे तो उनको पता लगेगा कि व्यक्तिके अन्दरका ज्ञान बढानेसे लेकर मानव समाजकी

संघटना और उनके सुख बढानेके सब कार्य इस यज्ञकर्ममें समाविष्ट हो गये हैं।

इसलिये यज्ञ कर्म मानवोंका हित करनेका कार्य है। मनुष्यको सुख और आनंद चाहिये, नीरोगिता आरोग्य और दीर्घजीवन चाहिये, अन्न धन ऐश्वर्य और भाग्य चाहिये, संरक्षण और अभ्युदय चाहिये। ये सब कर्म करनेसे ही होनेवाले हैं। मनुष्य योग्य कर्म करे और अपना अभ्युदय सिद्ध करे।

कर्मसु चामृतम्।

कर्ममें अमृत है। जो अमृत चाहते हैं वे कर्म करें। श्रेष्ठतम कर्म करनेका ऐसा महत्त्व है। इसलिये मनुष्य जीवन रहनेतक श्रेष्ठकर्म करता रहे, दीर्घ जीवन प्राप्त करे, आनन्दसे रहे। यही वैदिक धर्मका ध्येय, अखिल मानवजातिका परमकल्याण, कर्मयोगसे ही साध्य होनेवाला है।

# प्रश्न

१ मनुष्य जीवनका उद्देश्य क्या है?
२ देवताके वर्णनमें मनुष्यके लिये किस तरह आदर्शकी प्राप्ति होती है?
३ 'आत्मा' पदका क्या अर्थ है और वह क्या बताता है?
४ 'क्रतु और शतक्रतु' कौन है?
५ कर्मका तत्त्व क्या है?
६ वेदमें बुद्धि और कर्मवाचक एक ही 'धी' पद क्यों आया है?
७ कृतयुग किस तरह निर्माण किया जा सकता है?
८ कर्म किस तरह करना चाहिये? कर्मयोगमें 'योग' पदका अर्थ क्या है?
९ श्रेष्ठतम कर्मकी व्याख्या कैसी होती है?
१० कर्म, अकर्म और विकर्मका स्वरूप क्या है?
११ प्रशस्ततम कर्म किस कर्मको कहते हैं?
१२ सौ वर्षकी आयु कहांसे कहांतक होती है?
१३ जीवन गणमें किनका समावेश होता है?
१४ मनके निश्चयका महत्त्व क्या है?
१५ नरको कर्मका दोष नहीं लगता इसका कारण क्या है?
१६ जन, लोक, मनुष्य और नरके लक्षण क्या हैं?
१७ कर्म त्याग क्यों असंभव है?
१८ मृत्युको दूर किस तरह हम कर सकते हैं?
१९ आत्मघातकी कौन है? आत्मोद्धारक कौन है?
२० गुण्डोंके लिये कहां स्थान हो?
२१ दैवी और आसुरीवृत्तीके लक्षण कौनसे हैं?
२२ दीर्घ आयु क्यों चाहिये?
२३ आयुके आश्रयसे क्या किया जाता है?
२४ कुविचार क्यों दूर करने चाहिये और सुविचार क्यों मनमें स्थिर करने चाहिये?
२५ कर्म संन्यास होनेकी संभावना है या नहीं?
२६ यज्ञके लक्षण क्या हैं?
२७ कर्ममें अमृत किस तरह रहता है?
२८ मनुष्यकी आयु कितनी होती है?
२९ मनुष्य जीनेकी इच्छा किस समय कर सकता है?
३० यज्ञसे सब प्राणी किस तरह सुखसे रह सकते हैं?

# वसिष्ठ ऋषिका अग्निमें
# आदर्श-पुरुष-दर्शन

निरुक्तमें श्रीमान यास्काचार्य लिखते हैं कि—

**यत्काम ऋषिः, यस्यां देवतायां, आर्थपत्यं इच्छन्, स्तुतिं प्रयुंक्ते, तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।**

निरु. ७।१।१

जिस कामनाका धारण करता हुआ ऋषि, जिस देवतामे, इस अर्थका मैं स्वामी बनूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ, स्तुतिका प्रयोग करता है, उस देवताका वह मन्त्र होता है। यहां तीन भाव हैं—

१ ऋषिके मनमे किसी कामनाकी उत्पत्ति होनी,

२ किसी देवताके लिये उसने स्तुतिका प्रयोग करना,

३ 'मैं इससे इस अर्थका स्वामी बनूंगा' यह ऋषिके मनमे विचार रहना

ये तीन बातें यहां हैं। ऋषिके सामने अग्नि, वायु, जल आदि देवताएं रहती है, वैसी वे देवताएं हम सबके सामने रहती ही है। इस विश्वभरमे सर्वत्र देवताएं ही देवताए हैं। कोई स्थान देवताओंसे खाली नहीं हैं। हम देवताओंको देखते है, उनसे संबंध रखते हैं और उनका उपयोग भी हम सब करते ही हैं। उनके विषयमें बुरा भला कहते भी हैं।

यह जल, वायु अच्छा है, यह भूमी ठीक नहीं है। यह वनस्पति उपयोगी है आदि प्रकार हम उन देवताओंके संबंधका ही वर्णन करते हैं। इसी तरह ऋषि करते थे।

पर उनमें दो बातें विशेष रूपसे थीं। (यत्काम ऋषिः) किसी कामनाकी पूर्ति करनेकी इच्छा उनके मनमें रहती थी और (आर्थपत्यं इच्छन्) इससे मैं इस अर्थका स्वामी बनूंगा ऐसी महत्त्वपूर्ण आकांक्षा उनके मनमें रहती थी। ऐसी परिस्थितिमें ऋषियोंके मनमें जो स्फुरण हुआ वे ये वेदमंत्र हैं। अग्नि आदि देवताएं हमारे सामने रहतीं हैं, पर उन देवताओंमें हम जो बातें नहीं देखते, उन बातोंका साक्षात्कार ऋषियोंने उन देवताओंमे किया था। इसीका अर्थ 'अर्थपति' होनेकी इच्छा है। 'मै इस अर्थका पति बनूंगा' और इस अर्थके स्वामी बननेका मार्ग यह देवता इस रीतिसे बताती है ऐसा देखना ही उसका साक्षात्कार देवताके रूपमे करना है।



अब हम क्रमशः वसिष्ठ ऋषिके मन्त्रोंमें इन देवताओंके अन्दर किसका साक्षात्कार किया था, यह देखेंगे और इससे जानेंगे कि वसिष्ठ ऋषि (यत्काम ऋषि) किसकी कामना मनमें धारण कर रहे थे और (आर्थपत्यं इच्छन्) किस अर्थका पति होनेकी उनमे इच्छा थी और उनको वह सिद्धि किस तरह हुई थी।

हम प्रथम अग्निदेवताके मंत्र लेंगे। ये करीब १६१ मंत्र है। ऋग्वेदमे १४५ है और शेष ६ मंत्र अथर्ववेदमे तथा अन्य संहिताओंमें हैं। इन मंत्रोंमें अग्निका वर्णन अपने अन्तःकरणके स्फुरणसे, किसीके प्रलोभनसे नहीं, करते है। यह वर्णन करते हुए वसिष्ठ ऋषि इस अग्निदेवतामें ज्ञान, गुण देखते है—

## ज्ञानी अग्नि

"**५० कविः** (६७), **८७ कवितमः**, **८९ अमूरः कविः**" ये नाम इन मंत्रोंमें हैं। इनका अर्थ 'कवि, उत्तम कवि, अमूढ अर्थात् ज्ञानी कवि' है। अग्निमें कवित्व यहां ऋषिने साक्षात्कार करके देखा है। अर्थात् यहां उस अग्निका वर्णन है कि जो उत्तमसे उत्तम काव्य करनेवाला है और जो (अ-मूर) मूढ नहीं है। उत्तम ज्ञानी है।

"**४८ गृत्सः** (विद्वान्, ज्ञानी), **४६ सुचेता**, **५० प्रचेताः**" ये पद भी ज्ञानी, विद्वान् जिसका चित्त ज्ञानसे पवित्र हुआ है ऐसे प्रशंसनीय उत्तम अन्तःकरणवाले विशेष विद्वानका वर्णन कर रहे है।

"**७७ ब्रह्मा, १२८ सुब्रह्मा**" ये पद भी बड़े ब्रह्मवित्के बोधक है। सब विद्वानोंमें जो अत्यंत माननीय होता है उसको ब्रह्मा कहते है। यज्ञस्थानमें ब्रह्मा सर्वोपरि होता है। ऐसा यह ब्रह्मा यह अग्नि है। '**१२८ सुशर्मा**' इन्द्रियोंको

शमन करनेवाला, मनको शान्त करनेवाला जो ज्ञानी है वह सुशमी कहलाता है। '४४ जात-वेदाः (९०)' जिससे वेद बने या प्रकट हुए। जिससे ज्ञान फैलता है, जो वेदोंका ज्ञाता है, ( जातं वेत्ति ) जो प्रकट हुए वस्तुमात्रको यथावत् जानता है, जो पदार्थ विद्याको जानता है और आत्मविद्याको भी जानता है, ऐसा सर्वज्ञ जो है वह जातवेदा है। इसीलिये कहा है वह " ८७ केतं दधाति " ज्ञानका धारण करता है, जो ज्ञानी है, जिसमें ज्ञान विज्ञान परिपूर्ण रहता है।

'१०८ ब्रह्मणे गातुं विंद' ज्ञान प्रसार करनेका मार्ग जो जानता है, स्वयं ज्ञानी होकर जो दूसरोंको ज्ञानी बनाता है। अतः कहते हैं कि '८८ विशां तमः तिरः ददशे' प्रजा जनोंमें जो अज्ञानान्धकार है उसको जो दूर कर सकता है और दूर करके प्रजाजनोंको ज्ञान देता है। यह '५० अकविषु मर्तेषु कविः निधायि' अज्ञानी मानवोंमें यह बड़ा ज्ञानी होकर रहता है, उनको ज्ञानसंपन्न करनेके लिये यह उन्हींमे रहता है। अपने ज्ञानी होनेकी घमण्ड नहीं करता परंतु अपने लोगोंमें रहता है और उनको ज्ञानी बनानेका यत्न करता है। '६७ केतुः' यह ज्ञानका ध्वज है। यह ज्ञानका सूचक है, ज्ञानका चिन्ह है। जिस तरह ध्वज किसी संगठनकी सूचना देता है, उस तरह यह ज्ञानकी संघटनाको सूचित करता है, इसलिये यह ज्ञानका ध्वज जैसा है। '२४ महो सुवितस्य विद्वान्' यह बडे कल्याणके साधन करनेके मार्गको यथावत् जानता है और यह सबको वह निश्रेयसका मार्ग बताता है। यह '८७ उषसां उपस्थे अबोधि' उषःकालके पहिले जागता है, उठता है और अपना ज्ञानप्रसारका कार्य करता है।

'६९ अपाचीने तमसि मदन्तीः शाचीभिः प्राचीः चकार' गाढ अज्ञानान्धकारमें ही आनन्द माननेवाली अनाडी प्रजाजनोंको इसने अपनी अद्भुत शक्तियोंसे ज्ञानके प्रकाशमें लाकर अभ्युदयके सरल मार्गपर चलाया। ज्ञानदान देकर उन्नतिका उत्तम मार्ग बताया। यह '४७ य दैव्यानि मानुषा जनूंषि विद्मना जिगाति' जो दिव्य मानवी जन्मोंके वृत्तान्तोंका उत्तम रीतिसे जानता है, जो इतिहासका तत्त्व जानता है और उससे योग्य लाभ कैसा लेना यह अपने ज्ञानसे समझता है। तथा '९१ गणेन ब्रह्मकृतः श्रो.रिषय' संघटनामें रहकर जो ज्ञान प्रचार करते हैं उनको कभी कष्ट नहीं देता, अर्थात् ऐसे ज्ञानियोंको उन्नत करता है। इसलिये कहते हैं कि '१४ सहस्रपाथाः तनयः अक्षरा समेति' सहस्रों धनाढ्यके स्तोत्रोंसे युक्त पुत्र साक्षर हो। ज्ञानी बने।

अग्निके ये विशेषण वसिष्ठ ऋषिके अग्निसूक्तोंमें आये हैं। ऊपर जहां मन्त्रभाग दिया है वहां उसका मन्त्रांक भी दिया है वहा उस भागको मन्त्रमें पाठक देख सकते हैं। अब यहां प्रश्न यह है कि क्या ये विशेषण अग्नि-आग-में चरितार्थ हो सकते हैं! चरितार्थ होते हैं ऐसा कहना कठिन है। फिर सत्य विद्या प्रकाशक, स्फुरणसे प्रकट हुए वेदमंत्रोंमें ये कैसे आये है? इसका विचार करना है।

यह बात है कि जो 'यत्काम ऋषिः यस्यां देवतायां आर्थपत्य इच्छन्' इस निरुक्त वचनसे व्यक्त होती है। ऋषि कुछ असाधारण कामना धारण करता है और कुछ असाधारण अर्थका पति बननेकी इच्छा करता है। ऋषि तो साधारण भोगकामनामें फंसनेवाले होते ही नहीं, वहा उनकी परिस्थिति ही पवित्र रहती है। वहा वे असाधारण पवित्र परिस्थितिमें रहते हैं और विश्वकल्याणका विचार उनके मनमें सतत रहता है। इसलिये उनकी कामना भी विश्वकल्याणकी और उनका अर्थपति होना भी विश्वकल्याणके कार्यक्रमका एक भाग होता है। यह असाधारण विश्वकल्याणकी कामना धारण करके, विश्वकल्याणकी साधना करनेके लिये ही वे अर्थपति बनना चाहते हैं। ये ऋषि यज्ञाग्नि सिद्ध करके सामने रखते हैं और उसमें हव्य पदार्थोंका हवन करके अग्नि प्रदीप्त प्रज्वलित अतएव प्रसन्न हुआ है, उसकी ज्वालाएं प्रसन्नतासे ऊपर उठ रहीं हैं, चारों ओर उनका प्रकाश हो रहा है, उजाला हुआ है, अन्धेरा दूर हुआ है, अच्छी तरह मार्ग दीखने लगा है, यह देखकर अग्नि अन्धकार—अज्ञानान्धकारको दूर करता है, ज्ञानका प्रसार करता है, मार्ग बता रहा है ऐसा काव्य उनके पवित्र अन्तःकरणमें सहजस्फूर्तिसे स्फुरित होता है। इसलिये इस अग्निमें ज्ञानीका दर्शन होता है। वह काव्यकी दृष्टीसे योग्य ही है।

अग्नि वास्तवमें 'अग्+नी' है। ( अगति ) 'अग्' धातुका अर्थ जाना, प्रगति करना, अभ्युदय प्राप्त करना है। ( नयति ) 'नी' धातुका अर्थ ले जाना, चलाना, संभालकर ले चलना, साथ देकर ले जाना है। इस तरह 'अग्-नी'

इन दो धातुओंका मिलकर अर्थ ‘ प्रगतिका साधन करनेके लिये ले जाना ’ है । यह जो करता है वह अग्नि है। अग्रतक ले जाता है, अन्ततक पंहुचाता है । रातके घने अन्धेरेमें मार्ग दर्शाकर लोगोंको इष्ट स्थानपर पहुंचानेका कार्य अग्नि करता है, दीप करता है, जलती हुई लकडी भी मार्ग दर्शाती है यह ‘ अग्+नी ’ है, अग्रतक ले चलती है । इसी तरह अग्रणी भी अनुयायियोंको अन्तिम प्राप्तव्य स्थानतक ले जाता है और वहां पहुंचानेकी सहायता करता है, मार्गमें सुरक्षा करता है और अन्ततक निःसंदेह पहुंचाता है । ज्ञानी इसी तरह समाज-का अग्निके समान मार्गदर्शक ही है ।

## पुरुषार्थी अग्नि

जो ज्ञानी होता है, जो जनताका मार्गदर्शक अग्रणी होता है उसको समाजके हितके लिये बडा यत्न करना होता है । विना प्रयत्नके कुछ भी सिद्धि हो नहीं सकती । इसलिये अग्निके विशेषणोंमें निम्नलिखित पुरुषार्थ बोधक वचन आगये हैं—

‘ **३४ कर्मण्यः** ’ –कर्म करनेमें प्रवीण, कुशलताके साथ कर्म करनेवाला, पुरुषार्थी, सतत प्रयत्नशील, उद्यमी, ‘ **४६ क्रतु**; **४५ सुक्रतु** ( ८८ ) ’ —उत्तम कर्म करनेवाला, कर्म करना जिसका स्वभाव है, तथा ‘ **१०८ इर्यः परिज्मा** ’ –जो कर्मकी प्रेरणा करता है और चारों ओर भ्रमण करके जो जनतामें उत्साहमयी प्रेरणा देता है । ‘ **११८ दुद्रवत्** ’ — जो वेगसे चलता है, द्रुतगतिसे कार्य करता है, प्रयत्नोंकी शीघ्रता करता है । प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करता है ।

ये सब विशेषण प्रयत्नशीलताके वाचक हैं । पुरुषार्थ प्रयत्न इन पदोंसे प्रकट होता है । अग्निके कारण कितने कार्य होते है । स्वयं जलता रहता है और दूसरोंको प्रकाश देता है । मार्ग-दर्शन करता है । जीवित रहता है तबतक उजाला देता है । गति करता रहता है । लकडियोंको खाता है, अन्धेरा-रूपी शत्रुको जलाता, दूर करता है । अन्न पकाकर लोगोंको पुष्टी देता है । सहायक होता है । अग्नि सतत यज्ञ करता और करवाता है । यज्ञशीलताका यह उत्तम उदाहरण है ।

## दक्ष अग्नि

अग्नि अपने कर्ममें दक्ष रहता है । इसलिये उसके विशेषण ‘ **१ दक्षाय्यः**, **६ सुदक्षः** ( २८, ३४ ) ’ सार्थक होते हैं। अग्नि सदा दक्षतासे प्रकाश देता ही रहता है, वैसा अग्रणी दक्षतासे अपने कर्तव्य करे ।

## अहिंसाका व्रत

अग्नि अहिंसाका व्रत पालन करता है इसलिये उसको ‘ **९८ अध्वरस्य प्रकेतः**, **११० अध्वरस्य होता** ’ कहते हैं । इन पदोंका अर्थ यह है कि यह हिंसा, कुटिलतारहित कर्म करता है । अध्वर नाम यज्ञका है । ‘ **ध्वरा हिंसा तद्-भावो यत्र सोऽध्वरः** ’ जिस कर्ममें कुटिलता, तेढापन, वक्रता, हिंसा नहीं है उस कर्मका नाम अध्वर है । यह अध्वर–हिंसारहित कर्म करता है । इसलिये कहा है कि ‘ **२८ य अध्वराय सं महेम** ’ जो हिंसारहित, कुटिलतारहित कर्मका संपादन करता है इसलिये इसका हम गौरव करते हैं। यज्ञमें ‘ दिव्य विबुधोंकी पूजा, लोगोंकी संघटना और दीनोंकी सहायता ’ होती है । ये कर्म संघटनाके सहायक हैं, अतः ये दक्षतासे करने चाहिये और हिंसक वृत्ति छोडकर ही करने चाहिये ।

## सत्यभाषण करनेवाला

अग्नि सत्यभाषण करनेवाला है, इसलिये उसका वर्णन ‘ **९८ सत्यवाक्**; **१९ ऋतावा** ( ३७, ७६ ) इन पदोंसे किया जाता है। ‘ **अग्निर्वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्** ( ऐ० उ० ) ’ अग्नि वाणीका रूप धारण करके मुखमें प्रविष्ट होता है । मनुष्यके शरीरमें ‘ वाणी ’ अग्निरूप है । ‘ **७६ मधुवाचा** ’ -मधुर भाषण करनेवाला । वाणी मधुरभाषण द्वारा मित्र बनाती है और कटुभाषणसे मित्रों और भाईयोंमें कलह उत्पन्न करके महायुद्ध निर्माण करती है । भाषणरूप अग्निका यह प्रताप है । शब्द आग्नेयी शक्ति है । समाजमें ‘ अग्र-णी ’ अग्नि है । वह सत्यभाषणी होना चाहिये । वस्तुतः देखना चाहिये कि ये अग्निके विशेषण जो अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं, वे ‘ आग ’ के लिये ठीक होंगे अथवा ‘ ज्ञानी अग्रणी ’ के लिये ठीक तरहसे चरितार्थ होंगे । अग्निमें ‘ आदर्श पुरुषका दर्शन ’ यहां ऋषि कर रहे हैं इसलिये ये आदर्श पुरुषके ही विशेषण है ।

‘ **९३ हरि** ’ ( दुःखोंका हरण करनेवाला ) यह विशेषण अग्निका है । शीत बाधाका दुःख अग्नि दूर करता है । इसी तरह ‘ ज्ञानी अग्रणी ’ जनताके सब कष्टोंको दूर करता है और उन सब अनुयायियोंको सुखमय अवस्थातक पहुंचा देता है ।

## पवित्र करनेवाला अग्नि

अग्नि पवित्रता करनेवाला है, इसलिये उसके ये विशेषण हैं-

' ८ पावक ' ( पवित्र करनेवाला ); ४५ **शुचिः** ( शुद्ध, पवित्र ); ४७ **सुपूतः** ' ( उत्तम पवित्र ) ये अग्निके विशेषण उसका स्वभाव पवित्रता करनेवाला है, ऐसा बता रहे है। ये जैसे अग्निके विशेषण हैं उसी तरह ये अग्रणी नेताके भी हो सकते हैं। पर—

' ४८ **शुचि-दन्** ' ( शुद्ध दांतवाला ), अपने दांत शुद्ध स्वच्छ तथा निर्मल रखनेवाला, यह विशेषण अग्निपर काव्य दृष्टीसे ही लग सकेगा और मनुष्यपर ठीक तरह लग सकेगा। ' ८९ **शिव** ' यह विशेष वह शुद्ध है, पवित्र तथा कल्याण-कारी है ऐसा सिद्ध कर रहा है।

' १०६ **विश्व-शुक्**; १०९ **शुक्र-शोचिः**, ११० **भद्र-शोचिः** ' ये अग्निके विशेषण वह विश्वको प्रकाशित करता है ऐसा भाव बता रहे है। अग्नि साक्षात् अपने प्रकाशसे विश्वको प्रकाशित करता है और ज्ञानी अपने ज्ञानके प्रकाशसे विश्वको प्रकाशित करता है।

' ८ **तेजस्वी**, २१ **सुदीतिः**, २६ **बृहच्छोचिः**, ३७ **तपुर्मूर्धा**, ६५ **स्वया तन्वा रोचमानः**, ४७ **भानुः** ( ६७ ), ६० **शोशुचानः**, ७२ **देव**, ९० **समनगा अशुचत्**, ये सब विशेषण अग्नि प्रकाश गुण है यह भाव व्यक्त कर रहे हैं। विद्वानपर ये कविकल्पनासे सार्थ होंगे। ' ५८ **मानुषीः विशः अभिविभाति** ' मानवी प्रजाओंको यह चारों ओरसे प्रकाशित करता है, यह भी विशेष वर्णन वैसा ही दोनों ओर लगनेवाला है।

## प्रसन्न मनवाला अग्नि

अग्निके वर्णनमें उसके मनका वर्णन वसिष्ठके मंत्रोंमें आया है। वह देखने योग्य है- ' ९ **सुमनाः**, ( उत्तम मनवाला ), ७४ **मन्द्र** ( आनन्द, प्रसन्न ), ८४ **विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः** ( सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नचित्तसे रहो। ) ८४ **सुजातः** ( उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेसे उत्तम मनवाला ), १०६ **धियं धा** ( उत्तम बुद्धिका धारण करनेवाला, ९३ **धियं हिन्वानः** ( बुद्धिको शुद्ध कार्यमें प्रेरित करनेवाला ) ये सब अग्निके विशेषण अग्निमें अच्छी तरह नहीं घटते, परंतु ज्ञानी नेतापर ठीक तरह घट सकते हैं। उनमें भी ' सब सैनिकोंके साथ प्रसन्न मनके साथ बर्ताव करो ' यह मंत्रभाग सेनापति आदि सेनाके अधिकारियोंके लिये उत्तम रीतिसे मार्गदर्शक होनेवाला है। किसी कार्यके अधिकारीको यह उपदेश सदा ध्यानमें धारण करने योग्य है। वह इस उपदेशके अनुसार अपने अनुयायियोंके साथ बर्तेगा, तो वे भी संतुष्ट रहेंगे और कार्य उत्तम होगा अन्यथा यदि अधिकारी चिडचिडा रहेगा, तो उसके चिडचिडेपनसे उसके अनुयायी भी चिडचिडे बनेंगे और सब कार्य बिगड जायगा। इसलिये ' सैनिकोंके साथ सेनापति प्रसन्नचित्तसे बर्ताव करे ' यह उपदेश हरप्रकके लिये अपने अपने क्षेत्रमें निःसंदेह उपयोगी होनेवाला है।

## न दबनेवाला अग्नि

किसीके दबावमें आकर दब जाना और उसके दबावसे कार्य करना किसीको भी उचित नहीं है। इसलिये ' ११५ **अनाधृष्टः**, ११६ **अदाभ्यः** ' शत्रुके दबावसे न दब जानेवाला, ये विशेषण वीरताका प्रकाश बढानेवाले हैं। इस विश्वमें वीर पुरुष ही विजयी होते हैं अतः वे किसीके दबावमें आकर न दब जांय, परंतु अपने कर्तव्यका विचार करके स्वधर्मानुसार जैसा करना चाहिये वैसा आचरण करें।

## भक्ति करनेवाला अग्नि

अग्निके वर्णनमें वह देवताकी भक्ति करता है ऐसे भी नाम आगये है। ३४ **देव-कामः** ( देवकी भक्ति करनेवाला ), ९४ **देव-यावा** ( देवोंके पास जानेवाला ), ९४ **वनिष्ठः** ( उत्तम भक्ति करनेवाला ) ये विशेषण उसके उत्तम देवभक्त होनेका वर्णन कर रहे हैं। इससे वह ' ५० **अमृतः** ( अमर ), १२१ **अमर्त्यः** ( जो मरणधर्मा नहीं ) ' कहलाता है। मनुष्य मरणधर्मा है; परंतु वह देवत्व प्राप्ति करनेके पश्चात् अमर होता है।

## यज्ञकर्ता अग्नि

अग्निके वर्णनमें ' ७४ **होता** ( ७७ ), १३१ **होता, पोता, प्रचेताः** ये पद आये हैं। अन्यत्र ' **पुरोहित, अध्वर्यु, ऋत्विज्** ' ये भी नाम अग्निको दिये हैं। ये मानवोंमें जो याजक है उनके लिये प्रयुक्त होते हैं, परंतु गौणभावसे अग्नि-पर लग सकेंगे।

' ४१ **अतिथिः** ( अतिथिवत् पूज्य ), ८९ **मित्रः अतिथिः** ( जो मित्र और अतिथि भी है। ) ये पूज्य पुरुषके वाचक पद हैं। ये अग्निपर गौणभावसे लगेंगे।

यज्ञसे संघटन होता है और संघटनसे बल बढता है। इसलिये बलवाचक नाम भी अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं।

## बलवान अग्नि

अग्नि बलवान् है, वह धधकने लगता है उस समय वह बडे बडे वनोंको भी जलाकर खाक कर देता है। यह बल प्रत्येक मनुष्य जान सकता है। यह बलका आदर्श मनुष्य अपने सामने रखे और वैसा अप्रतिम बलवाला बननेका यत्न करे। इसके बलका वर्णन करनेवाले पद जो वसिष्ठके मंत्रोंमें हैं वे ये हैं—

' ९३ **वृषा** ( बलवान् ), **३९ वृष्ण.** ( सामर्थ्यवान् ), **१४ वाजी** ( शक्तिमान् ) **८ शुक्रः** ( ४७ ) वीर्यवान्; **५ सहस्यः** ( शत्रुका आक्रमण होनेपर भी जो अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है ), **५० सहस्वः, ७२ सहमान.** ( स्वयं इतना बलवान् कि जो शत्रुसे हिलाया नहीं जा सकता ), **१८ असु-रः** ( प्राणके विशेष बलसे युक्त ), **४२ त शुष्मः दिवः पति** ( तेरा बल द्युलोकतक फैलता है ); **४० यस्य पाजः पृथिव्यां तृषु अश्रेत्** ( जिसका बलयुक्त तेज पृथिवीमें शीघ्र ही चारों ओर फैलता है); **२१ सहसः सूनुः**, **१२१ सहसः यहुः**, ( बलका पुत्र, बलके लिये प्रसिद्ध वीर पुत्र); **१२७ ऊर्जः न पात्** ( बलकी हानि न करनेवाला, बलको न गिरानेवाला, बलका स्थायीरूपसे सुस्थिर रखनेवाला ) **८३ स्वयं तन्वं वर्धमान** ( स्वयं अपने शरीरको बढानेवाला, अपना शरीर हृष्टपुष्ट तथा बलशाली बनानेवाला,; **७० यह्वः; १४ वीळुपाणिः** ( बलवान् तथा बलवाले हाथोंसे युक्त ); **७० सहोभिः विशः निरुध्य बलिहृतः चक्रे** ( जो अपने सामर्थ्योंसे दुष्ट प्रजाजनोंका निरोध करके उनसे कर लेता है, इतना सामर्थ्यवान् जो है। )

ये सामर्थ्यवाचक अग्निके विशेषण समर्थ पुरुषका आदर्श लोगोंके सामने रखते हैं। वीर ऐसे सामर्थ्यवान् बने। घर-घरमें ऐसे तरुण बनें कि जो शत्रुका पराभव करें और अपना विजय संपादन करें। कोई निर्बल न रहे। वीर्य, धैर्य, शौर्य, पराक्रम सामर्थ्यसे सब पुरुष प्रभावी बनें।

## यशस्वी अग्नि

जो बलवान् शूर वीर पराक्रमी और प्रभावी होते हैं वे यशस्वी होते हैं। इसलिये वेदमंत्रोंमें अग्निको यशस्वी करके वर्णन किया है। ६४ **पृथु- श्रवः** ( जिसका यश बडा विशाल है ), **१०८ भुवना व्यश्यः** ( सब भुवनोंमें जो सुप्रसिद्ध है ), **१३४ दीर्घश्रुत् शर्म** ( जो विशाल यशसे युक्त सुख देता है); **११३ वीरवत् यशः दाति** ( जो वीर पुत्रोंके साथ विशाल यश देता है। )

जो शौर्य धैर्य वीर्यके प्रभावसे युक्त होगा वह यशस्वी होगा। इसमें कोई संदेह ही नहीं है। मनुष्यके सामने यह आदर्श है और अग्निके वर्णनसे इस आदर्शको लोगोंके सामने दिव्य कविने रखा है।

## गृहस्थी अग्नि

अग्निको ' ' **गृहपतिः** ' ( १; १३१ ) कहा जाता है। गृहका पालन करता है। गृहमें रहता है। ' **२ नित्यः दमे अस्ते** ' अपने घरमें सदा रहता है। इधर उधर भटकता नहीं। दूसरोंके घरोंमें जाकर व्यर्थ बैठनेमें समय व्यतीत नहीं करता। ' **५७ नृषदने असादि** ' मनुष्योंके रहनेके योग्य घरमें निवास करता है। ' **११३ दमे दमे निषसाद** ' अपने अपने घरमें आनंदसे रहता है। अपने घरका पालन करता है।

घरका क्षेत्र छोटा बडा हो सकता है। जहां अपना रहना सहना होता है वह अपना घर तो है ही, अपने ग्रामको भी अपना घर आलंकारिक रीतिसे कह सकते है, इसी तरह अपना प्रान्त और अपना देश भी अपना घर कहा जाता है। इस अपने घरमें रहना, इस घरका संरक्षण करना, इस घरमें प्रकाशित होते रहना, इसपर किसीने आक्रमण किया तो उस शत्रुका पराभव करना और अपने घरका रक्षण करना, इस अपने घरमें विबुधोंको बुलाना और यहां अपने द्वारा चलाये यज्ञमें उनकी सहायता प्राप्त करना ये कार्य गृहपती-गृहस्थी-के हैं। अग्निके वर्णनमें ये कार्य वर्णन किये गये हैं।

## तरुणी गृहपत्नी

पूर्वोक्त तरुण गृहस्थीके लिये उत्तम तरुणी गृहपत्नी अवश्य चाहिये। ' गृहिणी ' ही गृहपत्नीको कहते हैं। घरको चलानेवाली वह होती है। इस विषयमें वसिष्ठ मंत्रोंमें एक उत्तम स्मरण रखने योग्य वाक्य आया है, वह यह है—

**६ यं सुदक्षं युवतिः दोषावस्तः उपैति।**

' उत्तम दक्ष गृहपतिके पास युवती स्त्री-धर्मपत्नी-दिन

रात जाती है । ' अर्थात् पति उत्तम दक्ष चाहिये, अपने कर्तव्य निर्दोष रीतिसे करनेवाला चाहिये । ऐसा जो कर्तव्यदक्ष पति होगा उसके पास तरुणी स्त्री दिन रात रहनेकी इच्छा करती है । हां, सती पत्नी किसी तरह अपना कार्य करने या न करनेवाले पतिके साथ रहेगी, पर उसके मनमें प्रसन्नता नहीं रहेगी। पर जो पति कर्तव्यमें दक्ष, तेजस्वी और प्रभावी होगा उसका सहवास वह पत्नी आनन्दसे चाहेगी। इस कारण पुरुषोंको चाहिये कि वे तेजस्वी, शूर, प्रभावी, विजयी, दक्ष और यशस्वी हों और पतिपत्नी आनन्दसे गृहस्थधर्मका पालन मिलकर करें ।

## उत्तम अन्न

अग्निका वर्णन करते हुए कहा है कि **' ४८ भूरि अन्ना अत्ति '** वह बहुत अन्न खाता है । जो प्रदीप्त अग्निमें डाला जाता है उसको वह खा जाता है । पर यज्ञाग्निमें हविष्य अन्न-पवित्र अन्न- ही डाला जाता है। गृहस्थीको अपना भोजन योग्य प्रमाणमें खाना चाहिये । अपनी शक्ति स्थिर रहे, कृशता न बढे, बीमारियां न आजाय, इसलिये उत्तम अन्न पर्याप्त प्रमाणमें खाना चाहिये । **' ३७ घृतान्नः '** ( घृतमिश्रित अन्न हो ), जिसमें भरपूर घी मिलाया हो ऐसा अन्न हो । यह घी गौका ही होना चाहिये । गौका दूध, दही, मखन, छाछ आदि यथेच्छ सेवन करना चाहिये यह इसका तात्पर्य है। **' ६४ द्युमतीं इषं पेरयस्व '** तेज बढानेवाला अन्न हमें प्राप्त हो । वह अन्न तेजस्विता बढाता है कि जो घीसे भरपूर भरा होता है । यह घी भी बनावटी या मिलावटी नहीं होना चाहिये । **' हैयंगवीनं घृतं '** कल सवेरे गायका दोहन करके जो दूध प्राप्त हुआ हो, उसको तपाकर, शामको दही बनाकर, दूसरे दिन सवेरे उसको बिलोडकर जो मक्खन प्राप्त होगा उसको अग्निपर तपाकर जो घी होगा, उसका नाम हैयंगवीन घृत है। यह भरपूर सेवन करना चाहिये । ऐसा छः मासतक सेवन किया जाय तो उससे शरीरमें जो तेज बढेगा वह दिव्य तेज वर्णनीय होगा ।

**' १४ सहस्रपाथः '** सहस्रों प्रकारका उत्तम उत्तम खान-पानका अन्न हो सकता है ऐसा **' ३ यं वाजा उपयन्ति '** जिसके पास ऐसे अन्न उपस्थित रहते हैं, ऐसा धनधान्यसंपन्न गृहस्थीका घर हो ।

## उत्तम संतान

**११ शुने मा निषदाम**— संतानरहित घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो । **५३ वयं अवीराः मा**— हम संतानहीन न हों । **५१ अन्य जातं शेषः नास्ति**- दूसरेका पुत्र औरस नहीं कहलाता । **५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहीं**- दूसरेका पुत्र गोद लेना मनमें लाने योग्य भी नहीं है । **२१ नयः वीरः अस्मत्**-सब जनोंका हित करनेवाला वीर पुत्र हमें होना चाहिये । वसिष्ठके मंत्रोंमें उत्तम औरस संतानकी प्रशंसा है, दत्तक पुत्रकी निंदा है और उत्तम वीर तथा ज्ञानी पुत्र उत्पन्न करनेकी गृहस्थियोंको प्रेरणा है। जहां ऐसे वीर पुत्र रहते हैं वह सुखी घर कहलाता है ।

## सौंदर्यका साधन

गृहस्थ और गृहिणी स्वयं उत्तम घरमें रहें, सुंदर वस्त्र अलंकार धारण करें, यज्ञस्थानमें सजकर जाय ऐसा वेदमंत्रोंमें कहा है। **' २ सु-प्रति-चक्षः** ( सुदर ), **२१ रण्व-संदृक्** ( रमणीय दीखनेवाला ), **४० दस्म** ( दर्शनीय रूपवाला ), **४१ सु संदृक्** ( उत्तम सुंदर दीखनेवाला ) इस तरह अग्निके विशेषणसे आदर्श स्त्री पुरुष वस्त्र अलंकारसे सुशोभित हों, सुंदर दीखें, रमणीय दर्शन हो, शरीरकी सजावट करके घरसे बाहर जाय, यह बताया है जो गृहस्थियोंके लिये पसंद होने योग्य है ।

गृहस्थी स्त्री पुरुष **' सुवासाः '** ( उत्तम कपडे पहनकर रहें ) सुंदर आभूषण धारण करें । अपनी सुंदरता बढावें ।

## वीर अग्नि

अग्निका वर्णन वीरताके साथ किया है। **' ४८ तरुणः** ( युवा ); **३४ वीरः** ( शूर ), **४ सुवीरः** ( उत्तम शूरवीर ); **११८ द्युमान् सुवीरः** ( तेजस्वी वीर पुरुष ) ये अग्निके विशेषण बता रहे हैं कि, वीर पुत्र कैसा शूरवीर धीर होना चाहिये। उत्तम गृहस्थोंकी यही इच्छा हो ।

## धनवान् अग्नि

अग्निका वर्णन धनवान्, धनदाता करके किया है। वह इसलिये कि हमारा आदर्श गृहस्थी धनवान् होना चाहिये । निर्धन गृहस्थको सुख प्राप्त नहीं होता । इसलिये अपने उपास्य अग्निका वर्णन धनी करके किया है। अग्नि धनवान् है, धन अधिक प्राप्त करता है और धनका दान भी करता है। देखिये- **' १३२ रत्नधाः '** ( रत्नोंका धारण करनेवाला ); **७१ ' बुध्न्या वसूनि आकदे '** ( जो मूलतः उपयोगी धन अपने पास रखता है ), **' ६१ रयीणां रथ्यः '** ( जो

धनोंसे भरे रथपर बैठता है ), '६ यं वसूयुः अरमतिः- उपैति' ( जिसके पास धन प्राप्त करनेवाली प्रयत्न करनेकी बुद्धि होती है ) इस तरह यह अग्नि धनवान् है, सुयोग्य उद्योगसे यह धन प्राप्त करता है और अपने पास सुरक्षित रखता है।

यह धनका दान भी करता है। '१४ सूरिभ्यः रयिं आवहति' ( ज्ञानियोंको धन पहुंचा देता है ) ज्ञानी मांगनेके लिये आ जांय, या न आ जांय, यह उनके घर धन स्वयंस्फूर्तिसे पहुंचाता है। '८७ सुकृत्सु द्रविणं,' '१३८ दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति' सत्कर्म करनेवालोंको वह धन देता है, दाता मनुष्यको उत्तम वीरता युक्त धन देता है। यहां के 'सुवीर्यं रत्नं' ये पद मननके योग्य है। जिस धनके साथ उत्तम वीरता न होगी, उसका संरक्षण नहीं हो सकता। इसलिये वेद हमेशा कहता है कि धन वीरतासे युक्त चाहिये। ऐसा धन ज्ञानियोंके पास होना चाहिये।

'१३१ वार्यं यक्षि' — स्वीकार करने योग्य धन चाहिये। किसी तरह प्राप्त किया धन नहीं चाहिये, परंतु निर्दोष धन चाहिये। जो धन घरमें रहनेसे यश बढता है वह धन स्वीकार करने योग्य है। '१११ भगः वार्यं दातु' —ऐश्वर्यवान् हमें स्वीकारके योग्य धन देवें। '६५ पुरुक्षुं रयिं श्रुत्यं वाजं युवस्व' जिसके साथ बहुत अन्न होता है ऐसा धन और यशस्वी बल हमें चाहिये। धनके साथ अन्न और बलके साथ विजययुक्त यश हो। '९१ राये पुरंधिं यक्षि'— ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये हमें विशाल बुद्धि चाहिये। '११४ सः अमात्यं वेदः विश्वतः रक्षति' —वह सदा साथ रहनेवाला धन सुरक्षित रखता है। धन भी ऐसा हो कि जो अपने साथ रहे। धन स्थायी रहनेवाला हो। '१३७ द्रविणोदाः' धनका दान करनेवाला वीर हो। धनका दान करनेमें कृपणता न दिखाई जाय। '१३३ गोनां ऊर्वान् दयन्त'- गौवोंके झुण्ड दानमें दो। अब ऐसी अवस्था आगयी है कि लोगोंको गौके झुण्ड तो दूर रहे पर एक गौका दान देना और लेना कठिन हो रहा है। पर वेद तो गौओंके झुण्डोंके दान करनेकी बात बोलता है।

गौओंके साथ घोडे भी रहते हैं, अग्निके रथके घोडे लाल रंगके होते हैं। '६१ हरितः सचन्ते' लाल रंगके घोडे तुम्हारे रथको जोते हैं।

## अग्रणी अग्नि

इस समयतक जिस अग्निका वर्णन किया गया वह निःसंदेह अग्रणी है। अग्रणी ही अग्नि है। 'अग्निः कस्माद् अग्रणीः भवति' ( नि८० ) अग्रणी ही अग्नि कहलाता है। अग्रणी, अग्-र-नी, अग्-नी, अग्नि। बीचके रकारका लोप होकर अग्रणीका ही अग्नि बना है। अग्रतक ले जाता है, अन्त अवस्थाको पहुंचा देता है। उच्च प्राप्तव्य स्थानको पहुंचाता है। (अग्रं नयति इति अग्रणी.) श्रेष्ठ अवस्थातक पहुंचाता है वह अग्नि है। बीचमें ही नहीं छोडता। सीधा मार्ग दर्शाता हुआ निःश्रेयसकी प्राप्तितक साथ देता है। जो ऐसा करता है वह अग्रणी है, वही अग्नि यहां पूजनीय है। '१ अग्नि' (अग्निवत् पूजनीय, अग्रणी ), ६९ नृतमः ( मनुष्योंमें श्रेष्ठ, जो मानवोंमें श्रेष्ठ होता है वही अग्रणी नेता है अथवा उसीको नेता बनाना योग्य है।) ५७ वैश्वानरः ( विश्वा-नरः; सब मानवोंमें मुख्य, विश्वका नेता, सबका चालक, मुख्य, सबका अग्रणी ); ६४ विश्ववारः ( ७७, १३१ विश्वेभिः वरणीयः, सब मनुष्यों द्वारा स्वीकारने योग्य, सब मनुष्यों द्वारा अपना प्रमुख करके स्वीकार करने योग्य ), '५८ सिन्धूनां नेता' सब स्यन्दन शीलोंका नेता, चलनेवालोंका नेता, नदियोंका चालक।

इस तरह नेताको अग्नि कहा है। यह सबकी संमतिसे नेता होता है। अनुयायियोंकी संमतिके विना कोई नेता नहीं हो सकता।

## राजा अग्नि

अग्निको राजा करके भी वेदमंत्रोंमें वर्णन किया है। '८० अर्य ( श्रेष्ठ ); ८० राजा ( राज्यशासन करनेवाला ); ७६ विश्पतिः ( प्रजाजनोंका पालन करनेवाला ); ६१ कृष्टीनां पतिः ( कृषि करनेवालोंका पालन करनेवाला ); ७९ वसूनां ईशः ( सब प्रकारके धनोंका स्वामी, कोश अपने पास भरपूर रखनेवाला राजा ), १११ ईशानः वार्य आ भरति ( यह राजा स्वीकारने योग्य धन भरपूर भर देता है ) ६७ शं राज्यं ( इसका राज्य शान्तिका राज्य होता है); ६६ सम्राजः असुरस्य पुंसः कृष्टीनां अनुमाद्यस्य तवसः कृतानि विवक्मि— सम्राट् बलवान् पुरुषार्थी प्रजाओं द्वारा अनुमोदित समर्थ राजाके प्रशंसनीय कर्मोंका मैं

वर्णन करता हूं। यह सम्राट् अग्नि है, जो बलवान् पुरुषार्थी ( कृष्टीनां अनुमाद्य. ) कृषि करनेवालोंने जिसको अपना राजा होनेकी संमति दी है। यह सब वर्णन प्रजाके उत्तम नेताका ही है। ऐसे लोकाग्रणी नेता राज्यशासक होने योग्य है।

## अग्निके सहायक

जो राजा या अग्रणी नेता होता है, उसके सहायक अनेक होते हैं, इसलिये अग्निके वर्णनमें '७४ **सुशेवः** ( उत्तम सेवा करने योग्य ) ८९ **सुसंसत्** ( उत्तम सभामें बैठनेवाला, लोकसभामें बैठकर राज्यशासनका कार्य करनेवाला ); १५ **यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति** — ( उत्तम कुलीन वीर जिसकी सेवा करते हैं, जिसके शासनकार्यमें कुलीन वीर कार्य करते हैं ); ७४ **देवानां सख्यं जुषाणः** ( दिव्य विबुधोंके साथ जो मित्रता रखता है अर्थात् जिसके सहायक ये दिव्य विबुध होते है। )

इस तरहकी सहायता जिसको मिलती है वही ठीक तरह प्रजाजनोंका नेतृत्व तथा शासनकार्य कर सकता है।

## सेनाको साथ रखनेवाला अग्नि

वसिष्ठ ऋषि जिस अग्निका वर्णन करते हैं वह अग्नि '१३ **स्वनीकः** ( सु-अनीकः, उत्तम शिक्षित सेनाको अपने साथ रखता है और शत्रुका पराभव उस सेनासे करता है ); ४० **ते सेना सृष्टा पति** ( तुम्हारी सेना तुम्हारी आज्ञा होते ही शत्रुपर गिर पडती है और शत्रुको परास्त करती है। )

सेनापति ही यह अग्नि है। यह विद्वान् भी है और सेना-संचालन भी उत्तम रीतिसे करता है। इस कारण यह सदा विजयी रहता है। शत्रु इसको दबा नहीं सकते।

## संरक्षक अग्नि

इस समयतक हमने ज्ञानी यज्ञकर्ता, तथा सेना अपने साथ रखकर शत्रुसे युद्ध करनेवाला अग्नि देखा। यह ज्ञानी भी है और शूर योद्धा भी है। ये दोनों गुण एकमें होने चाहिये, यह वसिष्ठके मंत्रोंका तात्पर्य स्पष्ट दीख रहा है। ज्ञानी अपनी विद्यासे संरक्षणकी आयोजना बनाता है और अपनी सेनाके बलसे ठीक तरह निभा भी लेता है। राष्ट्रमें ऐसे पुरुष चाहिये।

'१ **यं अवसे शृण्वन्**' — जिसको अपनी सुरक्षाके लिये सहायार्थ बुलाते हैं ऐसा सामर्थ्यशाली यह है। यह '१४ **सहसा अवन्** ( ५२ अपनी शक्तिसे सबका संरक्षण करता है ), ४४ **सूरीन् निपाति**— वह विद्वानोंका संरक्षण करता है, वह—

**५५ अनद्यात् पाति**

**११४ अंहसः पाति**

**५५ वनुष्यतः पाति**

**१०४ अनवद्यात् दुरितात् रक्षिषत्**

यह पापसे, निंद्यकर्मसे, हिंसासे बचाता है। राजाको उचित है कि वह अपनी प्रजाका इस तरह पापसे संरक्षण करे। अपने राष्ट्रमें '१०८ **पशून् गोपाः**' —पशुओंका संरक्षण करे। पशुओंका वध होने न दे। गौ आदियोंका संरक्षण राष्ट्रमें होना चाहिये। अनेक प्रकारसे ये पशु राष्ट्रकी सहायता करते हैं इस लिये उनका संरक्षण होना चाहिये।

**४३ अमितैः महोभिः शतं आयसीभिः पूर्भिः नः पातम्।**

**११५ नृपीतये शतभुजि मही आयसीः पूः भव।**

**१३६ पर्तृभिः शतं पूर्भिः पिपृहि।**

' अपरिमित शक्तियोंसे युक्त सैंकडों कीलोंवाली नगरियोंका संरक्षण कर, सैंकडों संरक्षक कीलोंसे संरक्षण कर, मनुष्योंका संरक्षण करनेके लिये सैंकडों प्रकारके संरक्षक साधनोंसे युक्त कीला जैसा तू संरक्षक हो।' नगरोंके संरक्षणके लिये लोहेके बने हुए कीले चाहिये, उनमें उत्तम सेना रखनी चाहिये और सब प्रकारके संरक्षक साधन चाहिये। इस तरह सुरक्षा करने-वाला संरक्षक सेनापति ही अग्रणी या अग्नि है। कीलोंसे जन पदका संरक्षण करनेवाला वीर ही यहां अग्निरूपसे वर्णन किया है।

## शत्रु संहार करनेवाला वीर अग्नि

'६६ **दारुं वन्दे**' —शत्रुका विदारण करनेवाले शूर वीरको मैं प्रणाम करता हूँ। '६७ **पुरंदरः**' —शत्रुकी नगरियोंका विदारण करनेवाला यह वीर है। '१०६ **असुरघ्नः**'- असुरों, राक्षसों, दुष्टोंका नाश करनेवाला यह वीर है। '१११ **रक्षांसि सेधति**' —यह राक्षसोंका नाश करता है। '९१ **जरूथं हन्**'—कठोर, दुष्ट भाषण करनेवाले शत्रुओंका वध कर।

' ११४ रिषतः तपिष्ठैः दृह; ११४ द्रुहः निदः,— घातपात करनेवाले द्रोही निंदकों दुष्टोंको ज्वालाओंसे जला दो । ' ८१६ स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु, स तन्वा तना नि हीयतां '— चोरी करनेवाला डाकू शत्रु विनाशको प्राप्त हो, वह बालबच्चोंके साथ विनष्ट हो । ' ७० य. देह वधस्नैः अनमयत् ' उस शत्रुका वध करनेके शस्त्रोंसे विनाश हो । ' ७ विश्वा अरातीः अपदहति '— सब शत्रुओंको जलाता है, उन शत्रुओंका विनाश करता है ।

**५९ तद्भिया असिक्नीः विशः भोजनानि जहातीः असमना आयन्, पुरः दरयन् ।**
**६८ अक्रतून् ग्रथिन मृध्रवाचः पणीन् अश्रद्धान् अवृधान् अयज्ञान दस्यून् प्रविवाय । अयज्यून् अपरान् चकार ।**
**६९ तं वस्व ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे ।**

' तेरे भयसे काली प्रजा भोजन छोडकर अस्तव्यस्त होकर भागती है और उसकी नगरियोंको तुम तोड देते हो । यज्ञ न करनेवाले, असत्य भाषण करनेवाले, कुव्यवहार करके ठगानेवाले, अश्रद्ध शत्रुओंको तुम भगा देते हो और उनको हीन अवस्थाको पहुंचाते हो । जो धनके स्वामी है, शत्रुके दबावसे न दब जानेवाले हैं, उन शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले वीरकी ही मैं प्रशंसा करता हूं । '

यह वीर ' १६५ विदुष्टरः— शत्रुओंद्वारा पराभूत न होनेवाला है । यही सब शत्रुओंका पराभव करता है । ' ५ यं यातुमावान् यावा न तरति '— इस वीरको दुष्ट शत्रु पराभूत नहीं कर सकता । ' ५४ नव्यः वाजी अभीषाट् '— यह तरुण बलवान् वीर शत्रुका दमन करनेमें समर्थ है ।

शत्रुदलका पूर्ण पराभव करनेवाला और अपना विजय संपादन करनेवाला यह वीर राष्ट्रमें प्रशंसनीय है । यह वीर अग्निकी एक विभूति ही है ।

## निवासक अग्नि

अग्नि जनताका निवास सुखसे करनेवाला है, इसलिये उस अग्निको ' ८ वसिष्ठ '-निवासकर्ता कहा है । वही ' ८९ अदितिः विवस्वान् '— वह भोजनके लिये अन्न देता है और लोगोंको वसाहत कराता है । घर घरमें रहकर सबका संरक्षण करता है और हरएक प्रकारसे संरक्षण करता है ।

यह सबके लिये ' ९८ दूत ' दूत जैसा सहायक होता है । मार्ग बताता है, प्रकाश बताता है । यह ' ८७ जारः ' वृद्ध है तो भी ' ९९ अ-जिरः ' जरा रहित अर्थात् तरुण जैसा ओजस्वी और वीर्यवान है । ऐसा हरएकके सामने आदर्श होना चाहिये ।

## रोग दूर करनेवाला अग्नि

अग्नि अपनी दाहक ज्वालाओंसे रोगबीज दूर करता है और रोगोंको हटाता है इसलिये उसको ' ८५ अमीव-चातनः ' रोग बीज दूर करनेवाला, ' ८५ रक्षो-हा '— रोग हेतुरूप सूक्ष्म जन्तुओंका नाश करनेवाला, ' ७ अमीवां चातयति '— रोगके कारण जो आम —अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाला रोग कारण है, उसको दूर करता है । अग्नि पित्तको निर्माण करता है जिससे पचनशक्ति बढ जाती है और रोग दूर होते हैं ।

राष्ट्रशासन व्यवस्थासे भी राष्ट्रको रोगोंसे मुक्त करना चाहिये ।

## आर्योंका सहायक और दस्युओंका विनाशक अग्नि

**६१ ' आर्याय उरुं ज्योति जनयन्, दस्यून् ओकसः आज '** यह वीर आर्योंके लिये विस्तृत प्रकाशका मार्ग बताता है और दस्युओंको अपने घरसे भी दूर भगा देता है । अर्थात् दस्युओंको नगरमें रहने नहीं देता और आर्योंको सब प्रकारकी सहायता और सुरक्षा देता है । सज्जनोंकी सुरक्षा और दुर्जनोंका विनाश करके समाजकी उत्तम व्यवस्था करना उत्तम राज्यशासनका मुख्य कर्तव्य है ।

## दुरवस्थाको दूर करनेवाला अग्नि

**१९ अवीरतायै दुर्वाससे अमतये क्षुधे रक्षस नः मा दाः ।**

' हमें ( अ-वीरतायै ) पुत्रहीनता, वीर पुत्र न होना, वीरोंकी सहायता न प्राप्त होना, ( दुर्वाससे ) बुरा कपडा, फटा या मलिन कपडा पहननेकी दरिद्रावस्थाकी स्थिति, (अ-मतये) निर्बुद्ध अवस्था, बुद्धिहीनता, ( क्षुधे ) भूखसे मरनेकी स्थिति, ( रक्षसः ) राक्षसोंके आधीन होनेकी स्थिति हमें कभी प्राप्त

न हों। अग्नि उच्च अवस्थाको पहुंचाता है और दुरवस्था दूर करता है। राष्ट्रशासकका यह कर्तव्य है कि वह प्रजाको इन दुर-वस्थाओंसे बचावे।

इनमें '**दुर्वासाः**' यह एक अवस्था है। फटे, मलिन, दारिद्र्यको बतानेवाले कपडे धारण करनेकी बुरी स्थिति हमें प्राप्त न हो। अर्थात् सुंदर मूल्यवान् अच्छे शोभा बढानेवाले कपडे पहननेकी उत्तम अवस्था हमारे लिये सदा रहे, सुन्दर वस्त्र उत्तम अलंकार आदिसे हम अपनी सुंदरता बढाते रहें। कुरू-पता, मलिनता, अलंकारहीनता हमारे पास न आजाय। हम दारिद्र्यमें न रहें। हम धनधान्य ऐश्वर्य संपन्न हों। हमारे पास उत्तम वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण, रथ घोडे तथा ऐश्वर्यके अन्य साधन हमारे पास भरपूर हों। और हम सुसंपन्न भाग्ययुक्त स्थितिमें रहें। कदापि दीन न बनें यह यहां तात्पर्य है।

## दूरदर्शी अग्नि

अग्निको '**१ दूरे दृश्**' (दूरदर्शी) कहा है। दूरसे देखता है। दूरका देखता है और यह स्वयं दूरसे दिखाई देता है। ऐसा इसका दोनों प्रकारसे अर्थ होता है। यदि यह दूर-दर्शी न होगा, तो वह अग्रणी नेता कैसा बनेगा और शत्रुका पराभव भी किस तरह कर सकेगा? इसलिये पूर्वोक्त वर्णनके साथ इसका दूरदर्शी होना अत्यंत आवश्यक ही है।

## प्रशंसित अग्नि

इतने उत्तम गुण इसमें हैं इसलिये इसकी प्रशंसा चारों ओर होती है। "**१ प्रशस्तः; ११९ ईड्यः; १३१ सुशंसः; १८ ईळेन्यः, २१ सुहवः; २७ नराशंसः;** (मनुष्योंद्वारा प्रशंसित); **यजतः; १६ यजिष्ठः; ५५ स्पृहाय्यः; ५८ पृष्टः**" वह प्रशंसाके योग्य है, ऐसा भाव बतानेवाले ये पद अग्निके विशेषण हैं। जिसमें पूर्वोक्त गुण होंगे वह मनुष्योंके द्वारा प्रशंसा होनेयोग्य होगा, इसमें कोई संदेह ही नहीं है। जो नेता है, प्रजाद्वारा अनुमोदित है, जनताका सुख बढानेवाला है, शत्रुको दूर करनेवाला है, ज्ञान विज्ञानसे संपन्न है उसकी निःसंदेह प्रशंसा होगी, इसमें संदेह ही क्या है?

## अग्निके रूपमें आदर्श पुरुषका दर्शन

अग्निके रूपमें ऋषियोंने आदर्श पुरुषका दर्शन किया। यही दिव्यदर्शन अथवा दिव्यस्फुरण है। केवल 'अग्नि' तो केवल 'आग' ही है। उसको सब देखते और जानते ही है। परंतु उसमें काव्य दृष्टिसे दिव्य आदर्श पुरुषका दर्शन करना यह थोडेही दिव्य दृष्टिवाले पुरुष कर सकते हैं। इसकी संक्षेपसे प्रक्रिया यह है—

१ अग्नि प्रकाशता है और अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्ग-दर्शन करता है, अन्धेरेको दूर करता है और ठीक रीतिसे अपने प्रकाशसे लोगोंको चलाता है।

इस तरह मनुष्य अपने अन्दर ज्ञानाग्नि जगावे, स्वयं ज्ञानी बने, अपने ज्ञानसे दूसरोंको प्रकाश बतावे, उनको मार्ग-दर्शन करे, उनके अज्ञानको दूर करे और ठीक धर्म मार्गपर उनको चलावे।

२ ज्योतियां तीन हैं, द्युस्थानमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथिवीपर अग्नि। सूर्य हमें सदा सहायता नहीं करता, जिस समय वह ऊपर दीखता है प्रकाश देता है, पर जिस समय रात्री होती है, उस समय सूर्यको हम सहयतार्थ बुला नहीं सकते, विद्युत् भी उस समय सहायता दे सकती है, ऐसी बात नहीं, परंतु अग्नि जिस समय जगाया जाय उस समय प्रकाश देकर मार्गदर्शन करनेके लिये सिद्ध रहता है। इसलिये वेदमें उसको 'दूत' कहा है। यह दूत दिव्य है, पर सदा दक्ष रहकर सहायक होता है। रात्रीके अन्धेरेमें यह इष्ट स्थानपर पहुंचाता है। थोडीसी लकडियां जलायीं तो वह अग्नि मार्ग दर्शाता है, दीपको साथ लेकर हम अन्धेरेमें जहां चाहे वहा जा सकते हैं। ऐसी लकडियां हैं कि वे जलती रहती हैं। जहा हम जाना चाहें वहा वह पहुंचा देता है बीचमें नहीं छोडता। इस कारण इसको 'अग्रणी' कहते हैं, अग्रणी ही अग्नि है। अग्र तक लेजानेवाला अग्रणी कहलाता है।

ज्ञानी मनुष्य भी इसी तरह अपने अनुयायिकी सहायता करें और उनको निश्रेयसके स्थानतक पहुंचा दें। उनको बीचमें ही न छोडें।

३ अग्नि अपने प्रकाशसे अन्धेरे रूप अपने शत्रुका नाश करता है और लोगोंको अन्धेरेके कष्टोंसे छुडाता है।

इसी तरह ज्ञानी अज्ञानरूप शत्रुको दूर करे और दूसरोंको ज्ञान देकर उनके अज्ञानको भी दूर करे। शत्रुको दूर करनेकी वीरता और तेजस्विता अपने अन्दर बढावे और शत्रुको दूर करे और लोगोंको सुरक्षित रखे।

इस रीतिसे अग्निके अन्दर एक एक गुण आलंकारिक रीतिसे मनुष्य देखे और उससे बोध लेता जाय।

पूर्वोक्त स्थानमें कई गुण अग्निके अन्दर ऋषिने साक्षात किये। उनमें कई तो अग्निमें घटते हैं, पर कई गुण ऐसे है कि जो ज्ञानी दिव्यपुरुषमें ही घट सकते हैं। जो ऊपर गुण दिये हैं वे सबके सब दिव्य आदर्श पुरुषमें तो पूर्णतया घट सकते हैं, पर केवल अग्निमें ही सब गुण घट सकते हैं ऐसा नहीं कह सकते। इसीलिये अग्निके अन्दर दिव्य आदर्श पुरुषका साक्षात्कार ऋषिने किया और उस साक्षात्कारके स्फुरण-का यह काव्य है।

पाठक इन गुणोंको किसी पुरुषमें देखनेका यत्न करें। वह आदर्श दिव्य पुरुष समाज, जाती और राष्ट्रका नेता हो जायगा और सबकी प्रशंसा उसको प्राप्त होगी।

पाठक अपने अन्दर इन गुणोंका धारण करें और इन गुणोंका विकास करें। जिनमें ये गुण विकसित होंगे वे दिव्य आदर्श पुरुष बनेंगे और सबके लिये वे आदर्श और पूजनीय हो जायगे।

अग्निदेवता 'ब्राह्मण देवता' है। इसमें ज्ञान प्रधानता है। मुखसे वाणी हुई और वाणीसे अग्नि हुआ है। इससे दूसरी बाजू यह है कि मुखसे अग्नि हुआ और अग्निसे वाणी हुई। इस तरह मुख-वाणी-अग्निका परस्पर संबंध है। मुखका कार्य वाणी है, वाणीका कार्य प्रमुखतया करनेवाले ब्राह्मण हैं। इस लिये अग्निके वर्णनसे ब्राह्मणका वर्णन होता है। इसलिये ज्ञानी होना, वक्तृत्व करना, मनको पवित्र करना, मनका संयम करना, ज्ञानका प्रसार करना, पुरुषार्थ प्रयत्न-यज्ञयाग करना-कराना, अहिंसा व्रतका पालन करना, सत्यभाषण करना, पवित्रता करना, प्रसन्न मनसे रहना, तेजस्वी रहना, बाहरके दबावसे न दबना, ईश्वरकी भक्ति करना, बल प्राप्त करना, गृहस्थी होना, योग्य पत्नीको प्राप्त करना, घृतमिश्रित अन्न खाना, उत्तम संतान उत्पन्न करना, वीरता धारण करना, धन प्राप्त करना, जनताका अग्रणी होकर उनको सन्मार्गसे ले जाना, राजा-राष्ट्राध्यक्ष बनकर राज्यशासन करना, अपने पास सेना रखना, उससे राष्ट्रका संरक्षण करना, शत्रुका नाश करना, राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करना, आर्योंकी सहायता करके दस्यु गुण्डोंको दूर करना, इत्यादि जो गुण अग्निके हैं ऐसा इन मंत्रोंमें कहा है, वे ब्राह्मणोंके गुण हैं। पाठक विचारकी दृष्टिसे देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इन गुणोंसे जो पुरुष युक्त होगा, वह बडा ज्ञानी होगा और जनताका उत्तम मार्गदर्शक नेता होगा।

यहां ब्राह्मणके गुणोंमें ज्ञान और शौर्यवीर्यका संमेलन है। उत्तरकालमें जो ब्राह्मणोंके गुण कहे हैं उनमें वीरताके गुण नहीं गिनाये। परंतु वेदमें ज्ञानके साथ वीरता ब्राह्मणके गुणोंमें संमिलित है यह भूलना नहीं चाहिये।

भगवान् परशुराम, द्रोण आदि परंपराके ब्राह्मणोंमें ये सब गुण दिखाई देते हैं। तथा गुरुकुलोंमें क्षत्रिय कुमारोंको धनुर्वेदकी पढाई करानेवाले ब्राह्मण ही थे। इसलिये ब्राह्मणों-को युद्ध विद्याकी शिक्षा भी अनिवार्य थी ऐसा इससे प्रतीत होता है। पाठक गण इसकी विशेष खोज करें।

# व सि ष्ठ ऋ षि का इ न्द्र में
# आदर्श–पुरुष–दर्शन

वसिष्ठ ऋषिके देखे इन्द्रदेवताके मन्त्र ऋग्वेदमें क्रमसे १६१ हैं और ऋग्वेदके फुटकर करीब २० हैं। इन मंत्रोंमें वीर पुरुषका आदर्श ऋषिने देखा है। 'इन्द्र' का ही अर्थ "इन्+द्र" अर्थात् शत्रुओंका विदारण करनेवाला है। इन्द्र देवता क्षात्र देवता है। राजा, शासक, राजपुरुष, सेनापति, वीर, रक्षक करके नियुक्त हुए पुरुष आदिका आदर्श 'इन्द्र' देवतामें पाठक देख सकते हैं। इन्द्रमें शक्ति है, वीर्य है, संरक्षण करनेका सामर्थ्य है। इस विषयका आदर्श इन्द्र मन्त्रोंमें हम देख सकते हैं। सबसे प्रथम इन्द्रमें हम प्रचण्ड शक्तिका दर्शन करते हैं, जिसके पास शक्ति नहीं होगी वह अन्योंका संरक्षण किस तरह कर सकेगा? इसलिये इन्द्रमें शक्ति अवश्य चाहिये।

## शक्तिमान् इन्द्र

'**१९० अंग शक्र**' प्रिय शक्र! यह 'शक्र' पद शक्तिमानका वाचक है। जो (शक्नोति इति शक्रः) जो कर्म करनेकी शक्ति रखता है वह शक्र है। जिसमें सामर्थ्यकी शक्यता है वह इन्द्र है। '**१९६ शविष्ठः; २२६ तविषी उग्र; २७१ वाजी**' ये इन्द्रवाचक पद उसके सामर्थ्यके वाचक है। वह अतुल सामर्थ्यवान् है, यह इनका अर्थ है।

'**१७६ पुरुशाक**'— विशेष शक्तिमान, '**१८५ तुविष्म इन्द्र**'– सामर्थ्यवान् इन्द्र, '**१९९ ईशानः**— स्वामी, राजा, अधिकारी, शासक, '**२४५ वीर**'— वीर्यवान्, '**२५६ शतक्रतु**'— सैंकडों कर्म करनेवाला, अनंत कर्म करनेका सामर्थ्य जिसमें है, '**२५९ पुरोयोधा**'— अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाला, युद्धमें पीछे न हटनेवाला; '**१८९ ज्यायः**'— श्रेष्ठ ये सब इन्द्रके वाचक पद इन्द्रका प्रचण्ड सामर्थ्य है ऐसा भाव बता रहे हैं?

'**१७७ सहसा-वन्**'— शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य जिसमें है। '**१८१ स्व-धा-वन्**'— अपनी निज धारणा शक्तिसे युक्त, '**१९१ सुशक्तिः**'— उत्तम शक्तिमान्; **२४० शवसी**— बलवान, सामर्थ्यशाली, ये सब इन्द्रके नाम उसकी शक्तिके वाचक हैं। पाठक यहां देखें कि इन्द्रके प्रत्येक नाममें शक्तिका अर्थ टपक रहा है। विना शक्तिके संरक्षणका कार्य हो नहीं सकता। इसलिये जिनको संरक्षण-के कार्यपर नियुक्त करना है, उसमें पर्याप्त प्रभावी सामर्थ्यवान् है वा नहीं यह पहिले देखना चाहिये यह इसका आशय है।

'**१७० अजरं दूणाशं क्षत्रं**'— इन्द्रका क्षात्र तेज कम न होनेवाला और पराभूत न होनेवाला है। ऐसा ही होना चाहिये। '**१८२ उग्रः-इन्द्रः वीर्याय जज्ञ**'— शूर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है। '**१८२ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः**'— यह इन्द्र (नर्य) मानवोंका हित करनेके लिये जो करना चाहता है, वे कर्म वह कर छोडता है। उसके उन कर्मोंके करनेमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। इतना इसका सामर्थ्य है। यह जो करना चाहेगा वह कर ही छोडेगा। '**१८५ महित्वा तविषीभिः उभे रोदसी आपप्राथ**'— अपनी महिमासे अपनी शक्तियोंके द्वारा इस द्युलोकसे पृथ्वी लोक तक इसका यश फैला है। '**१८० नृतम इन्द्रः**' मानवोंमें अत्यंत श्रेष्ठ है, इसकी बराबरी करनेवाला कोई दूसरा मनुष्योंमें नहीं है। इसलिये यह '**१८० नृणां सखा अविता**' मानवोंका मित्र और उनका संरक्षण करता है। अपनी शक्तिसे यह सबका संरक्षण करता है।

'**१९७ क्रत्वा जन्मन् अभिभूः**'— इन्द्र जन्मसे ही अपने पौरुष सामर्थ्यसे शत्रुका पराभव करनेवाला है। '**स्वेन शवसा वृत्रं जघान**'— अपने बलसे घेरनेवाले शत्रुका वध करता है। वह '**शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्**'— शत्रु युद्ध करता हुआ इन्द्रकी शक्तिको जान न सका। इतनी इसकी शक्ति अपरंपार है। '**२०६ ते असुर्य**'– तेरे प्राणोंका बल बडा भारी है। '**११६ वज्रबाहुः वृषणः**

**इन्द्र:** '— वज्र धारण करनेवाला, अथवा वज्रके समान जिसके बलवान् बाहु हैं ऐसा यह बलवान् इन्द्र है। इसका शरीर बल बडा है वैसा प्राणोंका बल भी बडा है। '**२११ विश्वानि शवसा ततान** '— सबको अपने बलसे यह फैलाता है। '**२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् अश्नुवन्ति** '— विशेष संमान देने योग्य इन्द्रकी महिमाको कोई भी पार नहीं कर सकता। '**ते राधः वीर्यं न उदश्नुवन्ति** '— तेरे यश तथा वीर्यका पार किसीको नहीं लगता। '**१९४ विश्वा कृत्रिमाणि भीषा रेजन्ते** '— इन्द्रके भयसे सब भूत कांपते हैं। सब उससे डरते हैं।

'**१९८ पूर्वे देवाः असुर्याय क्षत्राय ते सहांसि अनुममिरे** '— पूर्व समयके देवोंने अपने बल और क्षात्र तेजको तुम्हारे- इन्द्रके सामर्थ्यसे कम ही मान लिया था। '**१९६ स अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्**।'— वह श्रेष्ठ इन्द्र विषम अर्थात् शक्तिसे बडे शत्रुके साथ भी स्पर्धा करता है। किसी वीरके साथ इन्द्र लडनेके लिये डरता नहीं। क्योंकि उसका बल बडा प्रभावी है। वह इन्द्र—

**२२१ महे उग्राय वाहे।**
**१४१ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे।**
**१४९ महि क्षत्राय पौंस्याय भव।**

' बडी वीरता, क्षात्र बल और सामर्थ्यके लिये ही यह प्रसिद्ध है। ' यह वीर—

'**१८४ युध्मः, अनर्वा, खजकृत्, समद्वा, शूरः जनुषा सत्राषाट्, अषाळ्हः, स्वोजाः, इन्द्रः पृतनाः व्यासे, विश्वं शत्रूयन्तं जघान** '— युद्धके लिये तत्पर, पीछे न हटनेवाला, युद्धमें कुशल, युद्धमें उत्साही, शूर, जन्मसे शत्रुका पराभव करनेवाला, कभी पराभूत न होनेवाला, निज शक्तिसे युक्त इन्द्र अपनी सेनाको व्यूहमें रखता है, और सभी शत्रुओंका नाश करता है। इस मंत्रके पद इन्द्रकी शूरताका विशेष वर्णन करते है। उत्तम क्षत्रियका ही यह वर्णन है। '**१५० त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय** '— तू उत्तम शस्त्रसे घेरनेवाले शत्रुका नाश करता है। अपने शस्त्रको सुतीक्ष्ण रखना चाहिये यह भाव यहां है। '**सुहन्तु**' जिससे शत्रुका हनन होता है वैसा शस्त्र तीक्ष्ण चाहिये।

**२६५ सत्राराजानं मनुत्तमन्युं इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे।**

' साथ साथ तेजस्वी उत्तम उत्साही इन्द्रकी प्रशंसा बल बढानेके लिये वाणियां गाती हैं। ' इन्द्रके स्तोत्र गानेसे बल बढता है, उत्साह बढता है। सामर्थ्य बढानेकी इच्छा बढती है।

**२४० ते महिमा व्यानट्। यत् हस्ते वज्रं आदधिषे घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः।**

'तेरी महिमा फैली है। जब तू हाथमें वज्र लेता है तब भयंकर बनता है और अपने प्रयत्नसे शत्रुके लिये असह्य होता है।' ऐसी विलक्षण इन्द्रकी शक्ति होती है।

**११३ समन्यवः सेना समरन्त, महः नर्यस्य ते बाह्वो दिद्युत् ऊर्ती पताति।**

' जब उत्साही सेना युद्ध करती है, तब मनुष्योंके हित करनेके लिये युद्ध करनेवाले तेरे बाहुओंसे तेजस्वी संरक्षक शस्त्र शत्रुपर गिरता है, जिससे मानवोंका बडा संरक्षण होता है। '

**२७४ तरणिः जयति, क्षेति, पुष्यति।**
**२८५ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति।**

' त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला, जय प्राप्त करता है, वही विजयी होकर यहां सुखसे निवास करता है, और पुष्ट भी होता है। जब वह विशाल बुद्धिसे युक्त होता है तब बलको प्राप्त करता है।'

**२६८ रायस्कामः वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे।**

' मै धनकी इच्छा करके वज्रधारी दक्ष इन्द्रको सहाय्यार्थ बुलाता हूं। ' '**१८८ न त्वावान् अन्यः जातः जनिष्यते**' तुम्हारे समान दूसरा कोई भी न हुआ और न होगा और नहीं इस समय है। ऐसा अद्वितीय शक्तिमान यह वीर इन्द्र है। यह '**१२५ सुशिप्रिन्, ११० सुशिप्रः** '— उत्तम शिर-स्त्राण धारण करता है, कवच धारण करता है। '**१८९ अद्रिवः** '— पहाडपरके किलोंमें रहकर युद्ध करता है और शक्तिके कारण '**२०९ दस्म** '— सुंदर भी है। जो वीर पराक्रमी शक्तिमान होते हैं वे अपने तेजके कारण सुंदर भी दीखते हैं। शक्ति और प्रभाव अपने अन्दर रहना यही सौंदर्य बढानेवाला है। तेजस्वितासे सौंदर्य निर्माण होता है। वीरोंके लिये यह आदर्श है। हमारे वीर ऐसे प्रभावी हों।

## संरक्षण करनेका कर्तव्य

वीरोंका कर्तव्य है कि वे जनताका संरक्षण करें, यह इन्द्रके वर्णनमें आया है वह अब देखिये—

' १७२ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये कुत्सं आवः '- शरीरसे शुश्रूषा करता हुआ, युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा करता रहा। इन्द्रने कुत्सकी रक्षा की थी।' ' १७३ सुदासं विश्वाभिः ऊतिभि· प्रावः '- ' राजा सुदासकी सुरक्षा अनेक संरक्षणके साधनोंसे इन्द्रने की।' 'वृत्रहत्येषु क्षेत्रसाता पौरुकुत्सीं त्रसदस्युं पुरुं आवः ' वृत्रके साथ होनेवाले युद्धमें पुरुकुत्सके पुत्र, त्रसदस्यु और पुरुकी सुरक्षा इन्द्रने की थी। युद्धके समयमें भी इन्द्र अपने अनुयायियोंकी रक्षा करता है।

' १७७ अवृकेभिः वरूथैः शायस्व ' क्रूरतारहित श्रेष्ठ साधनोंसे सबकी सुरक्षा कर। साधनोंकी परिशुद्धता देखनी चाहिये। साधन अच्छे चाहिये और परिणाम भी अच्छा होना चाहिये। ' १८१ तन्वा ऊती वावृधस्व '—अपने शरीरसे संरक्षण शक्तिको बढाओ। अपने अन्दर शक्ति न रही, तो वह दूसरोंको सुरक्षित रख नहीं सकता। इसलिये अपनी निज शक्ति बढानी चाहिये ऐसा यहा कहा है।

१८१ नृषदनं युवा अवोभिः जग्मि— मनुष्योंके रहनेके स्थानमें उनका संरक्षण करनेके लिये तरुण वीर अपने पासके संरक्षण करनेके साधनोंके साथ जाय और उनका संरक्षण करे। ' १८२ महः एनसः त्राता '— बडे पापसे संरक्षण करो। ' १८३ वीरः जरितारं ऊतीः प्रावीत् '- वीर भक्तको संरक्षणोंके साधनोंसे सुरक्षित रखता है।

' १९९ शतं ऊते, अस्मे भूरेः सौभगस्य अवः बभूथ '— हे सेंकडों साधनोंसे संरक्षण करनेवाले वीर, हमारे बडे सौभाग्यका संरक्षण करनेवाला हो। तुम संरक्षणके सब साधन अपने पास रख और हमारे सौभाग्यका उत्तम संरक्षण कर। ' २१५ सुदासे ते शतं ऊतयः '— सुदास राजाका संरक्षण करनेके लिये सैंकडों संरक्षणके साधनोंका उपयोग कर। ' २७६ रथानां अविता बोधि '— रथोंका संरक्षण करनेवाला करके प्रसिद्ध हो। ' २९० महाधने सखीनां अविता बोधि '- युद्धके समय अपने मित्रों, अनुयायियोंका संरक्षण करनेवाला हो। मित्रोंका संरक्षण कर।

' ३०० महिना तरुत्रा '— अपनी बडी शक्तिसे सबका संरक्षण करनेवाला हो।

इस तरह इन्द्र अपने अनुयायियोंका संरक्षण करता है, यह वर्णन है। मनुष्य वीर बने, अपने पासकी शक्ति बढावे, संरक्षण करनेके साधन बढावे और उनका उपयोग करके अपने लोगोंका संरक्षण उत्तम प्रकार करे। यह उपदेश इन मंत्रोंसे मिलता है।

## युद्ध

आक्रमण करनेवाले शत्रु सहजहीसे दूर नहीं होते' इसलिये उनके साथ युद्ध करके उनका पराभव करके उनको दूर करना आवश्यक होता है, इसलिये इन्द्रको युद्ध करनेकी आवश्यकता होती है। यह इन्द्र—

' १९५ आयुधेभिः भीमः एषां विवेष '— शस्त्रोंसे युक्त होनेके कारण भयंकर बना हुआ यह वीर शत्रुके सैन्यमें युद्ध करनेके लिये घुसता है। ' १५४ इन्द्रः सुदासे वाध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत् ।'— इन्द्रने राजा सुदासका संरक्षण करनेके लिये असत्यभाषी शत्रुओंका युद्धमें वध किया। शत्रुका वध करके सुदासको सुरक्षित किया।

' १५१ युधा नून् अजगन् '— युद्धसे, युद्धके समय इस वीरने शत्रुके वीरोंपर आक्रमण किया।' १५८ मृध्रवाचं जेष्म '— व्यर्थ भाषण करनेवाले, असत्य प्रचार करनेवाले शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे। ' १६० दुर्मित्रासः तृत्सवः प्रकलवित् इन्द्रेण वेविषाणाः सृष्टाः विश्वा भोजनानि सुदासे जहुः— दुष्ट शत्रुके सैनिकोंमें इन्द्र घुसा और उसने ऐसा युद्ध किया कि वे शत्रुके सैनिक अपने सब भोजन छोडकर भाग गये। ' १५९ गव्यवः अनवः द्रुह्यवः षष्टिः शता षट् सहस्राः षष्टिः च वीरासः दुवोयु निसुषुपुः '— गौवें चुरानेवाले अनु और द्रुह्यु नामक शत्रुके छियासठ हजार और साठ वीर काटे गये। इतना प्रचण्ड युद्ध हुआ कि शत्रुके इतने वीर मारे गये और वे भूमिपर मरकर सोये। सदा द्रोह करनेवाले झूठ मूठ प्रचार करनेवाले द्रुह्यु कहे जाते हैं। छियासठ हजार शत्रु एक युद्धमें काटे जाने योग्य बडा भारी युद्ध हुआ। तथा और देखिये—

### १५८ एषां विश्वा दृंहितानि पुरः सप्त सहसा सद्यः विदर्दः।

' इन शत्रुओंकी सब प्रकारसे सुदृढ कीलोंसे सुरक्षित नगरियोंके सातों प्राकारोंको तोडकर सब नगर उध्वस्त किये। ' इससे वे शत्रु नष्ट हुए और सज्जनोंको रहनेके लिये शान्त स्थान प्राप्त हुआ। ' १५६ वैकर्णयोः पकं च विंशति

च जनान् न्यस्तं ' — अच्छी बातें वारंवार कहनेपर भी जो नहीं सुनता उसके इक्कीस वीरोंका वध किया।

इस प्रकारके युद्ध इस वीरने किये, शत्रुओंका पराभव किया और अपने अनुयायियोंको शान्तिका सुख दिया। इस तरह युद्ध न किया जाय तो शत्रु दूर नहीं होंगे और सज्जनोंका संरक्षण भी नहीं होगा। इसलिये सज्जनोंका संरक्षण करनेके लिये और दुर्जनोंको दूर करनेके लिये ऐसे युद्ध करने आवश्यक ही होते हैं।

## नास्तिकोंका पराभव

शत्रुके वर्णनमें ' **अनिन्द्र** ' पद आता है। जो इन्द्रका अनुयायी नहीं है। ' **१६१ शृतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं परानुनुदे** '— अपने अन्नको खानेवाले, स्पर्धा करनेवाले, इन्द्रकी उपासना न करनेवाले नास्तिकोंका पराजय करके आस्तिकोंको शान्ति देनी है। आर्य और दस्यु इनका यह झगडा है।

' **१६५ मन्यमानं देवकं जघन्थ** ' —वीर घमंडी क्षुद्र देवताके पूजकका वध करते हैं। क्षुद्र देव पूजक ही दस्यु हैं। जिनको सर्वव्यापक ईश्वरकी कल्पना नहीं है इसलिये जो क्षुद्र देवपूजा करते हैं और सज्जनोंको जो कष्ट देते हैं वे वधके योग्य हैं। ' **२७४ कवत्नवे देवासः न** '— कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव नहीं करते। ये सब लक्षण संस्कार हीन जातियोंके हैं। ये ही संस्कारहीन जातिके लोग संस्कार संपन्न जातियोंको उपद्रव देनेवाले होते हैं।

## शत्रुके नगरोंको तोडना

**१७५ नव नवतिं पुरः सद्यः निवेशने शततमा अविवेषीः।**

**१३१ सर्वाः पुरः एकः सु नि मामृजे, पतिः जनी इव।**

' इन्द्रने, शत्रुकी ९९ नगरियोंको तोड दिया और तत्काल ठहरनेके लिये सोवी नगरीमें प्रवेश किया। ' ' सब शत्रुकी नगरियोंको, वैसा अपने आधीन किया जैसा पति अपनी स्त्रियोंको वश करता है। ' यहां अनेक पत्नियोंको एक पति वश करता है ऐसा लिखा है। इस उपमासे शत्रुकी निर्बलता दिखायी है। शत्रुकी तैयारीसे अपनी तैय्यारी अधिक उत्तम रहनी चाहिये यह भाव इन मंत्रोंका है। अपना हमला होनेपर शत्रु पराभूत ही होना चाहिये।

## शत्रुको दूर करना

' **१९० अमित्रान् परानुदस्व** '- शत्रुओंको दूर कर। ' **२२७ वृत्रास सुहना कृधि** '— शत्रुओंका वध सहज हो ऐसा प्रबंध। ' **१५८ अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि** '- कठोरभाषी, निंदक, दान न देनेवाले दुष्ट शत्रुओंके आधीन हमें न कर। अर्थात् शत्रुओंका नाश कर और हमें उनसे होनेवाले कष्टोंसे छुडाओ। ' **२२४ दुर्गे ये मर्तासः नः अभि अमान्ति, अमित्रान् निश्नथिहि** '- कीलेमें रहकर जो शत्रु हमें कष्ट पहुंचाते हैं, उन दुष्ट शत्रुओंको शिथिल कर।

' **१९२ अज्ञानाः अशिवासः दुराध्यः वृजना नः मा अवक्रमुः** '— न समझते हुए आक्रमण करनेवाले, अशुभ, दुष्ट, कपटी क्रूर शत्रु हमपर आक्रमण न करें ऐसा सुरक्षाका प्रबंध कर। यहां कई शत्रुओंकी गणना की है। ये आक्रमण न करें ऐसा सुरक्षाका प्रबंध होना चाहिये।

' **७८१ अदेवीः माया असाहिष्ठ** '- जो राक्षसी कपट जाल फैले होते हैं, उनमें फंसना नहीं चाहिये। उस कपट जालको दूर करना चाहिये। ' **२९५ भेदं जघन्थ** '- अपने अन्दर जो भेद, फूट अथवा आपसके झगडे होते हैं, उनको दूर करो। ये भेद ही आगे शत्रुको घरमें लाते हैं और भयानक आपत्ति खडी होती है। ' **१६४ सर्वताता भेदं प्रमुषायत्** '- यज्ञसे भेदको दूर करना योग्य है। यह मंत्र भी वही बात कहता है।

' **सहमान** और **असह्य** ' ऐसे वीर होने चाहिये। शत्रुका आक्रमण होनेपर स्वयं अपने स्थानपर रहकर शत्रुको भगा देना, इस शक्तिका नाम है, ' सहमान ' और जिस समय हम शत्रुपर आक्रमण करते हैं, उस समय अपने आक्रमणसे शत्रु छिन्न भिन्न होकर परास्त हो जाय, इस शक्तिको ' असह्य ' कहते हैं। ये दो प्रकारकी शक्ति अपने वीरोंके पास रहनी चाहिये। तब अपना विजय होगा। इसमें किसी शक्तिकी न्यूनता रही तो अपना पराजय होगा। इसलिये सावधानी रखनी चाहिये।

यहां दिये मंत्रोंके मननसे शत्रु कौन है, उसको दूर किस तरह करना चाहिये, अथवा उसका नाश कैसा करना चाहिये। इस विषयके बडे महत्त्व पूर्ण आदेश इन मंत्रोंसे पाठकोंको मिल

सकते हैं । इसलिये पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करें और युद्ध विषयक बोध प्राप्त करें ।

## शत्रुका नाश

शत्रुका नाश न हुआ तो शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती । शान्ति प्राप्त करना, आनंद प्राप्त करना तो सबका उद्देश्य है ही । इसलिये शत्रुका नाश करनेका प्रयत्न करना प्रत्येकका एक अत्यंत आवश्यक कर्तव्य है । जो इन्द्रके मन्त्रोंमें अनेक प्रकारके वर्णनोंके द्वारा बताया है, वह अब देखिये—

' १६६ **पराशरः शतयातुः वसिष्ठः** '— दूरसे शर-संधान करनेवाला सैंकडों यातना देनेवाले शत्रुओंका सामना करनेवाला जो होता है वही ( वसिष्ठः ) यहां निवास कर सकता है । पर जो शत्रुपर सुदूरसे प्रहार नहीं कर सकता, सैंकडों दुष्टोंका प्रतिकार नहीं कर सकता वह तो शत्रुसे पराभूत हो जायगा, फिर वह यहा सुरक्षित किस तरह रह सकेगा ? इन सैंकडों शत्रुओंका प्रतिकार करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर धारण करना चाहिये । ' १६९ **युध्यामधिं न्यशिशात्** '— जो शत्रु सदा युद्ध करनेकी ही बुद्धि रखता है, वारंवार शान्तिके उपायसे समझानेके प्रयत्न करनेपर भी जो युद्ध टालनेकी इच्छा नहीं करता, वह ' युध्याम-धि ' युद्धकी बुद्धि धारण करनेवाला शत्रु है, उसको नष्टभ्रष्ट करना चाहिये । कभी उसको जीवित छोडना नहीं चाहिये ।

' १७१ **दासं शुष्णं कुयवं न्यरंधयः** '— वारंवार हमारा नाश करनेवाला बलवान और धनका नाश करनेवाला जो शत्रु है उसका नाश करना चाहिये । ' दास ' उसको कहते हैं कि जो ( दस उपक्षये ) जो निष्कारण विनाश करता रहता है । ऐसे शत्रुका विनाश करना चाहिये । ' १७४ **त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि** '— तू अपने वीरोंके साथ रहकर अनेक शत्रुओंका नाश करता है । ऐसे शत्रुका विनाश तो करना ही चाहिये । ' १७५ **वृत्रं नमुचिं अहन्** '— घेरनेवाला शत्रु वृत्र कहलाता है ( वृणोति इति वृत्र. ), तथा पीछा न छोडने-वाले शत्रुका नाम ' न मुचि ' है । ये दोनों शत्रु नाश करने योग्य हैं ।

' १७१ **एकः विश्वाः कृष्टीः च्यावयति**-अकेला शूर वीर शत्रुके संपूर्ण सैनिकोंको भगा देता है । ऐसा बल रहा तो ही विजय प्राप्त होनेकी आशा हो सकती है । ' १६१ **इन्द्रः मन्युभ्यः मन्युमिमाय. पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे** '- इन्द्रने क्रोधी शत्रुओंके क्रोधको दूर किया और उनको भागने-वालोंके मार्गसे दूर भगा दिया । इन्द्रने उनका ऐसा पराभव किया, कि वे शत्रुता छोडकर दूर स्थानको भाग गये, जहासे कि वे पुनः शत्रुता करनेमें असमर्थ रहे । इन्द्रका प्रभाव ऐसा है कि वह जिसके पक्षमें होगा, उसका जय होगा । ' १६१ **सिंह्यं पेत्वेन जघान** '— सिंहका वध बकरेसे उन्होंने करवाया । यदि इन्द्र बकरेके साथ रहा तो वह बकरा सिंहको भी भारी हो जाता है । यह वीरका प्रभाव है ।

' १६३ **ते शर्धः शश्वन्तः रर्धुः** '— तुम्हारे शत्रु सदाके लिये विनष्ट हुए हैं, अब पुनः वे खडे नहीं होंगे ऐसा तुमने जो यत्न किया है वह प्रशंसा योग्य है ।

' १७८ **तुर्वशं यादुं निशिशीहि । १७९ पर्णीन् व्यदाहन् । ११२ वृत्राणि अप्रति जघन्वान्** '— त्वरासे वशमें होनेवाले शत्रुको तुमने अच्छी तरह विनष्ट किया है, बुरा व्यापार व्यवहार करनेवालोंको तुमने हटाया है और घेरनेवाले शत्रुओंको तुमने नष्टभ्रष्ट किया है । इस तरह सब शत्रुओंका विनाश किया है ।

इस तरह शत्रुका नाश अवश्य करना चाहिये, यह सनातन तत्त्व महर्षि वसिष्ठजीने देखा जो इन मंत्रोंमें प्रकट हुआ है । शरीरमें रोगादि तथा कुविचार आदि शत्रु है, समाज और राष्ट्रमें दुष्ट दुर्जन चोर डाकू आदि शत्रु हैं । तथा विश्वमें अनेक शत्रु हैं । इन सब शत्रुओंका शमन होना चाहिये । इनका ऐसा बंदोबस्त होना चाहिये कि वे फिरसे कभी न उठ सकें और उपद्रव न मचा सकें । शत्रुका पराभव इतना होना चाहिये कि उनमें पुनः उठनेकी शक्ति रहनी नहीं चाहिये ।

' १५७ **वज्रबाहुः श्रुतं कवषं वृद्धं द्रुह्युं अप्सु निवृणक्** '— वज्रधारी इन्द्रने द्रोहकारी इन सब शत्रुओंको जलमें डुबा दिया । जलमें डुबाना या शस्त्रसे मारना यह तो युद्ध करनेवालेकी इच्छा पर रहेगा । मुख्य बात यह है कि शत्रु न रहे और वह पुनः उपद्रव न देसके । पुनः न उठनेकी अवस्था-को उसको पहुंचाना चाहिये ।

## इन्द्रकी दया और सहायता

इस समय तक जो हमने इन्द्रके वर्णन करते हुए लिखा, उससे यह प्रतीत होता है कि इन्द्र शत्रुका विनाश करनेवाला है, शत्रुके सिर काटता है, वज्रका उपयोग करके शत्रुका नाश